मार्गशीर्ष, वीरनि०सं०२४६६
दिसम्बर १९३९

अनेकान्त

वर्ष ३, किरण २
वार्षिक मूल्य ३ रु०

वीर-अवतार-कालीन

बलिदान का एक दृश्य

सम्पादक—
जुगलकिशोर मुख्तार
अधिष्ठाता वीर-सेवामन्दिर सरसावा (सहारनपुर)

संचालक—
तनसुखराय जैन
कनॉट सर्कस पो० ब० नं० ४८ न्यू देहली।

मुद्रक और प्रकाशक — अयोध्याप्रसाद गोयलीय।

❀ विषय सूची ❀

	पृष्ठ
१. अकलंक-स्मरण	१४१
२. बौद्ध तथा जैन ग्रन्थोंमें दीक्षा [प्रो० जगदीशचन्द्र एम. ए.	१४३
३. राग [श्रीमद् राजचन्द्र	१४६
४. विधवा सम्बोधन (कविता)—[श्री० 'युगवीर'	१४७
५. बंगीय विद्वानोंकी जैन साहित्यमें प्रगति [श्री० अगरचन्द नाहटा ...	१४६
६. अहिंसाकी कुछ पहेलियाँ [श्री० किशोरलाल मशरूवाला ...	१६२
७. ऊँच-नीच-गोत्र विषयक चर्चा [श्री० बालमुकन्द पाटोदी ...	१६५
८. अनुपम क्षमा [श्रीमद् राजचन्द्र ...	१७६
६. श्वेताम्बर न्याय साहित्य पर एक दृष्टि [पं० रत्नलाल संघवी ...	१७७
१०. गोत्रविचार [सम्पादकीय ...	१८६
११. बुद्धि हत्याका कारखाना [ग्रहस्थसे उद्धृत ...	१६४
१२. साहित्य परिचय और समालोचन [सम्पादक ...	२००

अनेकान्तकी फाइल

अनेकान्तके द्वितीय वर्षकी किरणोंकी कुछ फाइलोंकी साधारण जिल्द बंधवाली गई हैं। १२वीं किरण कम हो जानेके कारण फाइलें थोड़ी ही बन्ध सकी हैं। अतः जो बन्धु पुस्तकालय या मन्दिरोंमें भेंट करना चाहें या अपने पास रखना चाहें वे २॥) रु० मनिआर्डरसे भिजवा देंगे तो उन्हें सजिल्द अनेकान्तकी फाइल भिजवाई जा सकेगी।

जो सज्जन अनेकान्तके ग्राहक हैं और कोई किरण गुम हो जानेके कारण जिल्द बन्धवानेमें असमर्थ हैं उन्हें १२वीं किरण छोड़कर प्रत्येक किरणके लिये चार आना और विशेषांकके लिए आठ आना भिजवाना चाहिए तभी आदेशका पालन हो सकेगा।

—व्यवस्थापक

क्षमा-याचना

सम्पादकजीके अस्वस्थ रहनेके कारण 'धवलादि श्रुत परिचय' और 'ऐतिहासिक जैन व्यक्ति कोष' लेख समय पर न मिलनेके कारण इस किरणमें नहीं दिये जा सकते है। आशा है इस विवशताके लिये क्षमा दी जायगी।

—व्यवस्थापक

ॐ अर्हम्

नीति-विरोध-ध्वंसी लोक-व्यवहार-वर्त्तकः सम्यक् ।
परमागमस्य बीजं भुवनैकगुरुर्जयत्यनेकान्तः ॥

वर्ष ३ | सम्पादन-स्थान—वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा, जि० सहारनपुर | किरण २
प्रकाशन-स्थान—कनॉट सर्कस, पो० ब० नं० ४८, न्यू देहली
मार्गशीर्ष-पूर्णिमा, वीरनिर्वाण सं० २४६६, विक्रम सं० १९९६

अकलंक-स्मरण

श्रीमद्भट्टाऽकलंकस्य पातु पुण्या सरस्वती ।
अनेकान्त-मरुन्मार्गे चन्द्रलेखायितं यया ॥

—ज्ञानार्णवे, श्रीशुभचन्द्राचार्यः

श्रीसम्पन्न भट्ट-अकलंकदेवकी वह पुण्या सरस्वती—पवित्र भारती—हमारी रक्षा करो—हमें मिथ्यात्वरूपी गर्तमें पड़नेसे बचाओ—जो अनेकान्तरूपी आकाशमें चन्द्रमाके समान देदीप्यमान है—सर्वोत्कृष्टरूपसे वर्तमान है। भावार्थ—श्री अकलंकदेवकी मंगलमय वचनश्री पद पद पर अनेकान्तरूपी सन्मार्गको व्यक्त करती है और इस तरह अपने उपासकों एवं शरणागतोंको मिथ्या-एकान्तरूप कुमार्ग पर लगने नहीं देती। अतः हम उस अकलंक-सरस्वतीकी शरणमें प्राप्त होते हैं, वह अपने दिव्य-तेज-द्वारा कुमार्गसे हमारी रक्षा करो।

जीयात्समन्तभद्रस्य देवागमनसंज्ञिनः ।
स्तोत्रस्य भाष्यं कृतवानकलंको महर्द्धिकः ॥

—नगर-ताल्लुक, शिमोगा-शि०लेख नं० ४६

स्वामी समन्तभद्रके 'देवागम' नामक स्तोत्रका जिन्होंने भाष्य रचा है—उसपर 'अष्टशती' नामका विवरण लिखा है—वे महाऋद्धिके धारक अकलंकदेव जयवन्त हों—अपने प्रभावसे सदा लोकहृदयोंमें व्याप्त होवें।

अकलंकगुरुर्जीयादकलंकपदेश्वरः ।
बौद्धानां बुद्धि-वैधव्य-दीक्षागुरुरुदाहृतः ॥

—हनुमच्चरिते, ब्रह्मअजितः

जो बौद्धोंकी बुद्धिको वैधव्य-दीक्षा देनेवाले गुरु कहे जाते हैं—जिनके सामने बौद्धविद्वानोंकी बुद्धि विधवा-जैसी दशाको प्राप्त होगई थी, उसका कोई ऐसा स्वामी नहीं रहा था जो बौद्ध-सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठाको क़ायम रख सके—वे अकलंकपदके अधिपति श्रीअकलंकगुरु जयवन्त हों—चिरकाल तक हमारे हृदयमन्दिरमें विराजमान रहें।

तर्कभूवल्लभो देवः स जयत्यकलंकधीः ।
जगद्द्रव्यमुषो येन दण्डिताः शाक्यदस्यवः ॥

—पार्श्वनाथचरिते, वादिराजसूरिः

जिन्होंने जगत्के द्रव्योंको चुरानेवाले—शून्यवाद-नैरात्म्यवादादि सिद्धांतोंके द्वारा जगतके द्रव्योंका अपहरणकरनेवाले, उनका अभाव प्रतिपादन करनेवाले—बौद्ध दस्युओंको दण्डित किया, वे अकलंकबुद्धिके धारक तर्काधिराज श्रीअकलंकदेव जयवन्त हैं—सदा ही अपनी कृतियोंसे पाठकोंके हृदयोंपर अपना सिक्का जमानेवाले हैं।

भट्टाकलंकोऽकृत सौगतादि-दुर्वाक्यपंकैस्सकलंकभूतम् ।
जगत्स्वनामेव विधातुमुच्चैः सार्थं समन्तादकलंकमेव ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० १०५

बौद्धादि-दार्शनिकोंके मिथ्यैकान्तवादरूप दुर्वचन-पंकसे सकलंक हुए जगत को भट्टाकलंकदेवने, अपने नामको मानों पूरी तौरसे सार्थक करनेके लिये ही, अकलंक बना डाला है—अर्थात् उसकी बुद्धिमें प्रविष्ट हुए एकान्त-मलको, अपने अनेकान्तमय वचनप्रभावसे धो डाला है।

इत्थं समस्तमतवादि-करीन्द्र-दर्पमुन्मूलयन्नमलमानदृढप्रहारैः ।
स्याद्वाद-केसरसटाशततीव्रमूर्तिः, पंचाननो भुवि जयत्यकलंकदेवः ॥

—न्यायकुमुदचन्द्रे, प्रभाचन्द्राचार्यः

इस प्रकार जिन्होंने निर्दोष प्रमाणके दृढ प्रहारोंसे समस्त अन्यमतवादिरूपी राजेन्द्रोंके गर्वको निर्मूल कर दिया है वे स्याद्वादमय सैंकड़ों केसरिक जटाओंसे प्रचण्ड एवं प्रभावशालिनी मूर्तिके धारक श्रीअकलंकदेव भूमंडल पर केहरिसिंहकेसमान जयशील हैं—अपनी प्रवचन-गर्जनासे सदा ही लोक-हृदयोंको विजित करनेवाले हैं।

जीयाच्चिरमकलंकब्रह्मा लघुहव्वनृपति-वरतनयः ।
अनवरत-निखिलजन-नुतविद्यः प्रशस्तजन-हृद्यः ॥

—तत्त्वा०रा०, प्रथमाध्याय-प्रशस्तिः

जिनकी विद्या—ज्ञानमाहात्म्य—के सामने सदा ही सब जन नतमस्तक रहते थे और जो सज्जनोंके हृदयोंको हरनेवाले थे—उनके प्रेमपात्र एवं आराध्य बने हुए थे—वे लघुहव्वराजाके श्रेष्ठपुत्र श्रीअकलंकब्रह्मा—अकलंक नामके उच्चात्मा महर्षि—चिरकाल तक जयवन्त हों—अपने प्रवचनतीर्थ-द्वारा लोकहृदयोंमें सदा सादर विराजमान रहें।

—०—

बौद्ध तथा जैन-ग्रन्थोंमें दीक्षा

[ले०—श्री० प्रोफेसर जगदीशचन्द्र जैन एम. ए.]

अत्यन्त प्राचीन समयसे भारतीय इतिहासमें दो धारायें देखनेमें आती हैं। कुछ लोग ऐसे थे जो वेद-पाठी थे, अग्नि-पूजक थे और देवी-देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये यज्ञ-याग आदि करनेमें ही कल्याण मानते थे। दूसरे लोग उक्त बातोंमें विश्वास न करते थे; उनका लक्ष्य था त्याग, तप, अहिंसा, ध्यान और काय-क्लेश। प्रथम वर्गके लोगोंका लक्ष्य प्रवृत्ति प्रधान और दूसरे वर्गका निवृत्ति प्रधान था। एक वर्गके लोग ब्राह्मण थे, दूसरे वर्गके क्षत्रिय अथवा श्रमण थे। ऋग्वेदमें भी ऐसे लोगोंका उल्लेख आता है जो वेदोंको न मानते थे और इन्द्रके अस्तित्वमें विश्वास न करते थे। यजुर्वेद-संहितामें इन लोगोंका 'यति' के नामसे उल्लेख किया गया है। आपस्तंभ, बोधायन आदि ब्राह्मणोंके धर्मसूत्रोंमें इन श्रमणोंके विधि-विधानका विस्तारसे कथन आता है। इसी तरह उपनिषदोंमें 'भिक्षाचर्या' आदिके उल्लेखोंके साथ स्पष्ट कहा गया है—"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः, न मधया न वा बहुना श्रुतेन"–अर्थात् आत्मा शास्त्र, बुद्धि आदिके अगोचर है।

श्रमण (समण) शब्दकी व्युत्पत्ति बताते हुए शास्त्रकारोंने लिखा है—श्राम्यति तपस्यतीति श्रमणः, अथवा सह शोभनेन मनसा वर्त्तत इति समनाः—अर्थात् जो श्रम करते हैं-तप करते हैं वे श्रमण हैं, अथवा जिनका मन सुन्दर हो उन्हें श्रमण कहते हैं। यहाँ यह बात खास ध्यान रखने योग्य है कि श्रमणका अर्थ केवल जैनसम्प्रदाय ही नहीं, किंतु अभयदेवसूरिने 'निर्ग्रंथ, शाक्य, तापस, गेरुक और आजीवक' इस तरह श्रमणोंके पांच भेद बताये हैं। जैसा ऊपर बताया गया है श्रमणोंका धर्म निवृत्ति प्रधान है। उनका कहना है कि यह संसार क्षण भंगुर है, संसारमें मोह करना योग्य नहीं संसारमें रहकर मनुष्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता, इसलिये इसका त्याग कर बनमें जाकर अपने ध्येयकी सिद्धि तपश्चर्या और ध्यानयोगसे करनी चाहिये। गृहत्यागके साथ साथ श्रमण लोगोंमें आत्मोत्सर्गकी भी चरम सीमा बताई गई है। उदाहरणके लिये महाभारतमें शिवि राजाका वर्णन आता है जिसने एक अंधे आदमीको अपनी आँखें निकालकर दे दी थीं। मनुस्मृति और ब्राह्मणोंके पुराण-साहित्यमें आत्म-त्यागके विविध प्रकार बताकर उनका गुणगान किया गया है। अग्निप्रवेश, जलप्रवेश, पर्वतसे गिरना, वृक्षसे गिरना आदि आत्मोत्सर्गके अनेक प्रकारोंका वर्णन पुराणोंमें आता है। साथही वहाँ यह भी बताया गया है कि इन उपायोंसे आत्मोत्सर्ग करने वाला मनुष्य आत्मघाती नहीं कहलाता, बल्कि वह हजारों वर्ष तक स्वर्ग सुखका अनुभव करता है। बुद्ध भगवान्ने भी अपने किसी पूर्वभवमें एक पक्षीको बचानेके लिये अपने

शरीरका मांस दान करनेको तैयार हो गये थे। जैन-शास्त्रोंमें भी आत्मोत्सर्गके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं, अवश्य ही वे कुछ भिन्न प्रकारके हैं। उदाहरणके लिये सुकुमाल मुनि तप कर रहे हैं और उनका शरीर एक जंगलकी गीदड़ी खा गई। इसी तरह श्वेताम्बर शास्त्रोंके अनुसार, गजसुकुमाल स्मशानमें कायोत्सर्गसे ध्यानावस्थित हैं। सोमिल ब्राह्मण आकर उनके सिर पर मिट्टीकी बाड़ बनाता है, उसे धधकते हुए अंगारोंसे भरकर उसपर ईंधन चिन देता है। गजसुकुमाल मुनि अत्यन्त उग्र वेदना सहन करते हैं और अन्तमें उनका शरीर भस्म हो जाता है।

जिस समय हिन्दुस्तानमें जैन और बौद्धोंका बोल-बाला था, उस समय अनेक ब्राह्मण और श्रमण महावीर अथवा बुद्धके पास जाकर दीक्षित होते थे। दीक्षा-उत्सव बहुत धूमधामसे मनाया जाता था। जो गृहपति दीक्षा लेता था, वह अपने सम्बन्धी जनोंको निमन्त्रण देता था, उनका ब सन्मान करता था। तथा स्नान इत्यादि करके अपने ज्येष्ठ पुत्रको घरका भार सौंपकर, उसकी आज्ञा लेकर, पालकीमें सवार होकर अपने इष्ट मित्रोंके साथ दीक्षागुरुके पास पहुँचता था, इन लोगोंके संसारसे वैराग्य होनेका कारण नाशवान वस्तु होती थी। जैसे जातक ग्रंथोंमें आता है कि एक बार किसी राजाको घास पर पड़ी हुई ओसकी बिन्दु देखकर वैराग्य हो आया। गन्धार जातक में कहा गया है कि एक बार किसी राजाने देखा कि चन्द्रमाको राहुने ग्रस लिया है, बस इसी बात पर उसने संसारका त्याग कर दिया। कभी कभी अपने सिर पर कोई सफ़ेद बाल देखकर भी लोगों को वैराग्य हो आता था। इसी तरह संध्या कालीन मेघपंक्तिको शीर्णविशीर्ण देखकर लोग बनकी तैयारी करने लगते थे।

जो लोग प्रव्रज्या (दीक्षा) लेनेके लिये उत्सुक रहते थे, उनके माता-पिता और बन्धुजन उनको आग्रहपूर्वक बनमें जानेसे बहुत रोकते थे। वे लोग करुण आक्रंदन करते थे, नाना प्रकारके आलाप विलाप करते थे, और उनको नाना प्रकारकी युक्तियाँ देकर समझाते थे। पर इसका उन लोगों पर कोई प्रभाव नहीं होता था। विप्र और नमिराजके संवादमें विप्रने नमिराजसे कहा कि महाराज आप दीक्षा न लें, आपकी मिथिला नगरी अग्निसे जल रही है; पहले वहाँ जाकर अग्निको शांत करें। किंतु नमिराज उत्तरमें कहते हैं—'**मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दहति किंचन**' अर्थात् मिथिला नगरीके जलजानेसे मेरा कुछ भी नहीं जलता। बौद्धोंके बंधनागार जातकमें इस संबन्धमें जो कथा आती है, वह इस तरह है—

एक बार बोधिसत्त्व एक धनहीन गृहपतिके घर पैदा हुए। जब बोधिसत्त्व बड़े हुए, उनके पिता मर गये और वे नौकरी करके अपना तथा अपनी माताका उदर-पोषण करने लगे। कुछ समय बाद उनकी माँने उनकी इच्छाके विरुद्ध बोधिसत्वकी शादी करदी, और आप परलोक सिधार गईं। बोधिसत्त्वकी स्त्री गर्भवती हुई। बोधिसत्त्वको यह बात मालूम न थी। उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा—प्रिये, मैं गृह-त्याग करना चाहता हूँ, तुम मेहनत करके अपना पोषण कर लेना। उनकी पत्नीने कहा—स्वामिन्, मैं गर्भवती हूँ, मेरे प्रसव कर-नेके बाद, शिशुका मुख देखकर, आप प्रव्रज्या लेना। प्रसव हो गया। बोधिसत्त्वने फिर अनुमति चाही। स्त्रीने कहा—शिशु ज़रा बड़ा हो जाय तो आप जाइये। इस बीचमें बोधिसत्त्वकी पत्नीने दूसरी बार गर्भ-धारण किया। बोधिसत्वने सोचा कि यदि इस तरह मैं अपनी पत्नीकी बात पर रहूँगा तो मैं कभी भी अपना कल्याण

न कर सकूँगा। इसलिये वे एक दिन रातको उठकर बिना कहे ही घरसे चल दिये और हिमालय पहुँच कर तप करने लगे।

भगवती सूत्र आदि श्वेताम्बर सूत्रोंमें इस प्रकारके हृदयस्पर्शी वर्णन अनेक स्थानों पर आते हैं। जामालि महावीरके दर्शन करने जाते हैं। दीक्षा लेनेका उनका दृढ़ निश्चय हो जाता है। इस निश्चयको वे घर आकर अपने माता पितासे कहते हैं। उनकी माँ यह सुनते ही पछाड़ खाकर ज़मीन पर गिर पड़ती है और बेहोश हो जाती है। जब वह अनेक उपचार करने पर होशमें आती है। उनको अपने पुत्रके निश्चय पर अत्यंत दुःख होता है। जामालिके माता-पिता बहुत समझाते हैं, परंतु जामालि अटल रहते हैं। दोनोंसे अनेक प्रश्नोत्तर होते हैं और आखिर जामालि अपने निश्चयको मान्य रखते हैं। दीक्षाकी तैयारी बड़ी धूम-धामसे होती है। जामालिके लिये रजोहरण और पात्र लाये जाते हैं और एक नाईको बुलाया जाता है। नाई सुगन्धित जलसे हाथ पैर धोता है और साफ़ कपड़ेकी आठ तह बना कर अपने मुँह पर रखकर जामालिके पास आता है। जामालि उसको चार अंगुल केश छोड़ कर दीक्षाके योग्य केश काटनेको कहते हैं। नाई आज्ञाका पालन करता है। उस समय क्षत्रियकुमार जामालिकी माता भी वहाँ रहती है और वे अग्र केशोंको साफ़ वस्त्रमें ले लेती है, उनको गंधोदकसे धोती है और पुत्रके वियोगके कारण बड़े बड़े मोतियोंकी लडी जैसे सफेद आंसू टपकाती हुई कहती है कि अनेक शुभ तिथियों और उत्सवोंके अवसर पर हम इन्हीं केशोंको देखकर सन्तोष कर लिया करेंगे। जामालिकुमार पालकीमें बैठकर महावीर भगवान्के पास पहुँचते हैं। साथमें माता बन्धुजन भी जाते हैं। मां पुत्र-वियोगके कारण फिर अपने आँसुओंको नहीं रोक सकती, और "घडियव्वं जाया, जइयव्वं जाया, परिक्कमियव्वं जाया" अर्थात् संयममें यत्नशील रहना आदि शब्द कहकर वापिस चली जाती है।

मालूम होता है इन्हीं सब बातोंसे महावीर और बुद्धको यह घोषणा करनी पड़ी कि बिना माता पिताकी अनुज्ञाके कोई दीक्षा लेनेका अधिकारी न हो सकेगा। श्वेताम्बर ग्रंथोंके अनुसार तो स्वयं महावीर भगवान्को भी अपने बंधुजनोंकी आज्ञा न मिलनेसे, दीक्षा लेनेका मन होते हुए भी, कुछ समय तक गृहवासमें रहना पड़ा। श्वेताम्बर समाजमें तो दीक्षाके नाम पर आज भी अनेक उपद्रव होते हैं। बड़ौदा आदि रियासतोंमें बाल-दीक्षाके विरुद्ध बहुतसे क़ानून बना दिये गये हैं। यहाँ हम एक ईसाई पादरीका पत्र उद्धृत करते हैं। जो ईसाइयोंकी साधुदीक्षा पर कितना ही प्रकाश डालता है। यह पत्र इन पादरीने एक सज्जनको लिखा था जो अपने स्वजनोंकी इच्छाके विरुद्ध साधु (Priest) होना चाहते थे। वे लिखते हैं—

Even if your little nephew throws his arms round your neck, if your mother tears her hair and cloth and beats her breast which you, sucked even if your father throws himself on the ground before you—move, even the body of your father, flee with tearless eyes to the sign of cross. In this case, cruelty is the only virtue. For how many monks have lost their souls, because they had pity for their ftahers and mothers."

अर्थात्—यदि आपका नन्हासा भतीजा आपके गलेमें बांहें डालकर लिपट जाय, यदि आपकी माता अपने केश और वस्त्रोंको फाड़ डाले और जिस छातीका तुमने दुग्धपान किया उसको वे पीट डाले, तथा यदि आपका पिता आपके समक्ष आकर ज़मीन पर गिर पड़े—तो भी अपने पिताके शरीरको हटा दो और अश्रु रहित नेत्रोंसे क्रॉसकी ओर दौड़े चले जाओ। ऐसी दशा-में एक निर्दयता ही बड़ा गुण है। न जाने कितने साधुओंने अपने माता-पिताकी दयाके कारण ही अपनी आत्माको भुला दिया है।

जैन शास्त्रोंमें जगह जगह पर महावीरके ज़मानेकी सामाजिक परिस्थितिका वर्णन करनेवाले दीक्षासम्बन्धी अनेक उल्लेख आते हैं। इन सबका एक बहुत रोचक इतिहास तैयार हो सकता है।

राग

भगवान् महावीरके मुख्य गणधरका नाम तुमने बहुत बार सुना है। गौतमस्वामीके उपदेश किये हुए बहुतसे शिष्योंके केवलज्ञान पाने पर भी स्वयं गौतमको केवल ज्ञान नहीं हुआ, क्योंकि भगवान् महावीरके अंगोपांग, वर्ण, रूप इत्यादिके ऊपर अब भी गौतमको मोह था। निर्ग्रन्थ प्रवचनका निष्पक्ष-पाती न्याय ऐसा है कि किसी भी वस्तुका राग दुःखदायक होता है। राग ही मोह है और मोह ही संसार है। गौतमके हृदयसे यह राग जबतक दूर नहीं हुआ तबतक उन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई। श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्रने जब अनुपमेय सिद्धि पाई उस समय गौतम नगरमेंसे आ रहे थे। भगवान्के निर्वाण समाचार सुनकर उन्हें खेद हुआ। विरहसे गौतमने ये अनुरागपूर्ण वचन कहे "हे भगवान् महावीर! आपने मुझे साथ तो न रक्खा, परन्तु मुझे याद तक भी नहीं किया। मेरी प्रीतिके सामने आपने दृष्टि भी नहीं की, ऐसा आपको उचित न था।" ऐसे विकल्प होते होते गौतमका लक्ष फिरा और वे निराग-श्रेणी चढ़े। "मैं बहुत मूर्खता कर रहा हूँ। ये वीतराग निर्विकारी और रागहीन हैं वे मुझपर मोह कैसे रख सकते हैं? उनकी शत्रु और मित्रपर एक समान दृष्टि थी। मैं इन रागहीनका मिथ्या मोह रखता हूँ। मोह संसारका प्रबल कारण है।" ऐसे विचारते विचारते गौतम शोकको छोड़कर रागरहित हुए। तत्क्षण ही गौतमको अनन्त ज्ञान प्रकाशित हुआ और वे अन्तमें निर्वाण पधारे।

गौतम मुनिका राग हमें बहुत सूक्ष्म उपदेश देता है। भगवानके ऊपरका मोह गौतम जैसे गण-धरको भी दुःखदायक हुआ तो फिर संसारका और फिर उसमें भी पामर आत्माओंका मोह कैसा अनन्त दुःख देता होगा! संसाररूपी गाड़ीके राग और द्वेष रूपी दो बैल हैं। यदि ये न हों, तो संसार अटक जाय। जहाँ राग नहीं, वहाँ द्वेष भी नहीं, यह माना हुआ सिद्धान्त है। राग तीव्र कर्मबंधका कारण है और इसके क्षयसे आत्मसिद्धि है।

—श्रीमद्राजचन्द्र

विधवा-सम्बोधन

[विधवा-कर्तव्य-सूत्र]

विधवा बहिन, समझ नहीं पड़ता-
क्यों उदास हो बैठी हो !
क्यों कर्तव्यविहीन हुई तुम,
निजानन्द खो बैठी हो !
कहाँ गई वह कान्ति, लालिमा,
खोई चंचलताई है !
सब प्रकारसे निरुत्साहकी,
छाया तुम पर छाई है !!१

अंगोपांग न विकल हुए कुछ,
तनमें रोग न व्यापा है;
और शिथिलता लानेवाला
आया नहीं बुढ़ापा है !
मुरझाया पर वदन, न दिखती
जीनेकी अभिलाषा है !
गहरी आहें निकल रही हैं,
मुँह से, घोर निराशा है !!२

हुआ हाल ऐसा क्यों ? भगिनी
कौन विचार समाया है,
जिसने करके विकल हृदयको,
'आपा' आप भुलाया है ?
निज-परका नहिं ज्ञान, सदा
अपध्यान हृदयमें छाया है,
भय न भटकनेका भव-वनमें,
क्या अन्धेर मचाया है !!३

शोकी होना स्वात्मक्षेत्रमें,
पाप-बीजका बोना है,
जिसका फल अनेक दुःखोंका,
संगम आगे होना है ।
शोक किये क्या लाभ ? व्यर्थ ही
अकर्मण्य बन जाना है,
आत्मलाभसे वंचित होकर,
फिर पीछे पछताना है !! ४

योग अनिष्ट,वियोग इष्टका,
अघतरु दो फल लाता है;
फल नहीं खाना वृक्ष जलाना,
इह-परभव सुखदाता है।
इससे पतिवियोगमें दुख कर,
भला न पाप कमाना है,
किन्तु-स्व-पर-हितसाधनमें ही,
उत्तम योग लगाना है ॥ ५

आत्मोन्नतिमें यत्न श्रेष्ठ है,
जिस विधि हो उसको करना,
उसके लिए लोकलज्जा अप-
मानादिकसे नहिं डरना ।
जो स्वतंत्रता-लाभ हुआ है,
दैवयोगसे सुखकारी,
दुरुपयोग कर उसे न खोओ,
खोने पर होगी ख्वारी !! ६

माना हमने, हुआ,हो रहा
तुम पर अत्याचार बड़ा,
साथ तुम्हारे पंचजनोंका
होता है व्यवहार कड़ा ।
पर तुमने इसके विरोधमें
किया न जब प्रतिरोध खड़ा,
तब क्या स्वत्व भुलाकर तुमने
किया नहीं अपराध बड़ा ॥ ७

स्वार्थ-साधु नहिं दया करेंगे,
उनसे इस अभिलाषाको ।
छोड़, स्वावलम्बिनी बनो तुम,
पूर्ण करो निज आशा को ॥

सावधान हो स्वबल बढ़ाओ,
निज समाज उत्थान करो ।
'दैव दुर्बलोंका घातक',
इस नीति वाक्य पर ध्यान धरो ॥८

बिना भावके बाह्यक्रियासे,
धर्म नहीं बन आता है ।
रक्खो सदा ध्यानमें इसको,
यह आगम बतलाता है ॥

भाव बिना जो व्रत-नियमादिक,
करके ढोंग बनाता है ।
आत्म पतित होकर वह मानव,
ठग-दम्भी कहलाता है ॥९

इससे लोकदिखावा करके,
धर्मस्वाँग तुम मत धरना ।
सरल चित्तसे जो बन आए,
भाव-सहित सो ही करना ॥

प्रबल न होने पाएँ कषायें,
लक्ष्य सदा इस पर रखना ।
स्वार्थ-त्यागके पुण्य-पन्थ पर
प्रेम सहित निशदिन चलना ॥१०

क्षण-भंगुर सब ठाठ जगतके,
इन पर मत मोहित होना ।
काया-मायाके धोखेमें पड,
अचेत हो नहिं सोना ॥

दुर्लभ मनुज-जन्मको पाकर,
निज कर्त्तव्य समझ लेना ।
उस ही के पालनमें तत्पर रह,
प्रमादको तज देना ॥११

दीन-दुखी जीवोंकी सेवा,
करनी सीखो हितकारी ।
दीनावस्था दूर तुम्हारी,
हो जाए जिससे सारी ॥

दे करके अवलम्ब उठाओ,
निर्बल जीवोंको प्यारी ।
इससे वृद्धि तुम्हारे बलकी,
निःसंशय होगी भारी ॥१२

हो विवेक जागृत भारतमें,
इसका यत्न महान करो ।
अज्ञ जगतको उसके दुख-
दारिद्रय आदिका ज्ञान करो ॥

फैलाओ सत्कर्म जगतमें,
सबको दिलसे प्यार करो ।
बने जहाँतक इस जीवनमें,
औरोंका उपकार करो ॥ १३

'युग-वीरा' बनकर स्वदेशका,
फिरसे तुम उत्थान करो ।
मैत्रीभाव सभीसे रखकर,
गुणियोंका सम्मान करो ॥

उन्नत होगा आत्म तुम्हारा,
इन ही सकल उपायोंसे ।
शान्ति मिलेगी, दुःख टलेगा,
छूटोगी विपदाओंसे ॥१४

—'युगवीर'

बंगीय-विद्वानोंकी जैन-साहित्यमें प्रगति

[ले०—श्री अगरचन्द नाहटा]

भारतके अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा बंगालप्रान्तमें शिक्षाप्रचार अत्यधिक है । साहित्यके प्रत्येक क्षेत्रमें बंगीय-विद्वानोंने जैसा उत्तम और अधिक कार्य किया है वह सचमुच ही बंगालके लिए गौरवकी वस्तु है । विश्वकवि-रवीन्द्रनाथ, महान् उपन्यासकार-स्वर्गीय बङ्किमचन्द्र चटर्जी और शरत बाबू, पुरातत्त्व-विद् सर श्री जदुनाथ सरकार; महान् वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र वसु, आचार्य प्रफुल्लचंद्रराय और मेघनाद शाह, महायोगी स्वर्गीय रामकृष्ण, विवेकानन्द और अरविन्द घोष, त्यागवीर स्वर्गीय देशबन्धु चितरञ्जनदास, देशसेवक भूतपूर्व राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस, महान् क़ानूनवेत्ता रासविहारी घोष, परमसंगीतज्ञ तिमिरवर्ण, गिरिजाशंकर चक्रवर्त्ती, भीष्मदेव चटर्जी, ज्ञानेन्द्र गोस्वामी; ललित नृत्यकार विश्वमुग्धकर उदयशंकर भट्ट; समाज संस्कारक राजा राममोहनराय, केशवचन्द्रसेन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इत्यादि नररत्नोंने अपनी असाधारण प्रतिभाद्वारा विश्वमें बंगभूमिको गौरवान्वित कर दिया है । केवल बंगाल ही क्यों समस्त भारतभूमि इन महापुरुषोंको जन्म देकर सौभाग्यवती हुई है । विश्व इन महापुरुषोंके कार्य कलापों-द्वारा चकित एवं मुग्ध है ।

दार्शनिक चिन्तामें भी बंगीय विद्वानोंने अपनी बौद्धिक शक्तिका अच्छा परिचय दिया है । जैनदर्शन भारतीय दर्शनोंमें प्रधान और मननीय उत्कृष्ट दर्शन है । अतः बंगीय विद्वानोंका इस ओर ध्यान देना सर्वथा उपयुक्त है । किन्तु साधनाभावके कारण उनकी ज्ञान-पिपासाने प्रबलरूप धारण नहीं किया । इसबार कलकत्तेमें मुझे अनेक विद्वानोंसे साक्षात्कार होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ । उन लोगोंसे वार्त्तालाप होनेपर सभीने एक स्वरसे यही कहा कि "जैनदर्शनके सूक्ष्म तत्त्वोंको जानने की हमें बड़ी उत्कण्ठा है पर क्या करें ? साधन नहीं मिलते !" इन शब्दोंको श्रवण कर मेरे हृदयमें गहरी चोट लगी पर करता क्या ? बंगीय जैनसमाजने अभी तक एक भी ऐसा आयोजन नहीं किया कि जिसके द्वारा साहित्यिक सामग्री जुटाता और उसे लेजाकर बंगीय विद्वानोंको देता, जिससे वे अपनी जिज्ञासाकी प्यासको बुझाते, अस्तु ।

अब मैं उन बंगीय विद्वानोंके विषयमें लिखता हूँ जिन्होंने समुचित साधन नहीं मिलने पर भी अपनी अपूर्व कर्मठवृत्ति-द्वारा जैनसाहित्यमें अच्छे अच्छे कार्य किये हैं । ये विद्वान जैनधर्मके पूर्ण अनुरागी हैं । इनके विषयमें मैंने जो कुछ खोज की है, जिन जिनसे व्यक्तिगत वार्त्तालाप हुआ और उनके कार्यका परिचय मिला है उसीके आधार पर संक्षेपमें इस विषयमें लिख रहा हूँ ।

१ श्रीयुत हरिसत्य भट्टाचार्य M. A. B. L., वकील हवड़ाकोर्ट—

(पता—नं० १ कैलाशबोस लेन; हवड़ा)

जैनसाहित्यसेवी बंगाली विद्वानोंमें आपका स्थान सर्वोच्च है । आपकी दार्शनिक आलोचनाकी शैली बड़ी ही हृदयग्राही और गंभीर है । भारतीय दर्शनोंके अति-

रिक्त पाश्चात्य दर्शनोंके सम्बन्धमें आपका ज्ञान बहुत विशाल है अतएव आपका लेखन तुलनात्मक और तलस्पर्शी होता है। आपके लिखे हुए भारतीय दर्शन-समूहे जैनदर्शनेर स्थान, ईश्वर, जीव, कर्म, षड्द्रव्य—धर्म अधर्म, पुद्गल, काल, आकाश इत्यादि निबंध इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आपके इन निबन्धोंमेंसे प्रथम निबंधका गुजराती अनुवाद जब मेरे अवलोकनमें आया तभीसे आपसे मिलकर आपके लिखे अन्य सब निबंधों-को प्राप्त करनेकी उत्कंठा हुई; पर पता ज्ञात न होनेसे वैसा शीघ्र ही न बन सका। बहुत प्रयत्न करने पर बाबू छोटेलालजी जैनसे आपका पता ज्ञात हुआ और मैं बाबू हरषचन्द्रजी बोथराके साथ आपसे मिला। वार्त्ता-लाप होनेपर ज्ञात हुआ कि क़रीब २५ वर्ष पूर्वसे आप जैनग्रंथोंका अध्ययन व लेखन-कार्य कर रहे हैं, पर उन-के लिखित ग्रंथोंके प्रकाशनकी कोई सुव्यवस्था न होनेसे इधर कई वर्षोंसे उन्हें लिखना बंद कर देना पड़ा। जैन समाजके लिये यह कितने दुखका विषय है कि ऐसे तुलनात्मक गंभीर लेखकको प्रकाशन-प्रबन्ध न होनेसे लिखना बंद करना पड़ा, निरुत्साह होना पड़ा! भट्टाचार्यजीसे वार्त्तालाप होनेपर ज्ञात हुआ कि उनको जैनधर्मके प्रति हार्दिक आदर व भक्ति भाव है, उन्होंने यहाँ तक कहा कि यदि प्रबन्ध किया जा सके तो मेरा विचार तो पाश्चात्य देशोंमें घूम घूमकर जैनधर्मके प्रचार करनेका है। एक बंगाली विद्वानके इतने उच्च हार्दिक विचार सुनकर किसे आनन्द न होगा? मेरे हृदयमें तो हमारे समाजकी उपेक्षाको स्मरण कर बड़ी ही गहरी चोट पहुँची। क्या जैनसमाज अब भी आँखें नहीं खोलेगा?

श्रीयुत भट्टाचार्यजीके तलस्पर्शी गहन अध्ययन व लेखनके विषयमें पं० सुखलालजीने "जिनवाणी" ग्रंथके निदर्शनमें जो उद्गार प्रगट किये हैं उनमेंसे आवश्यक अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"श्रीयुक्त हरिसत्य भट्टाचार्य घणां वर्ष अगाऊ ओरी-एटल कॉन्फरेन्सना प्रथम अधिवेशन प्रसंगे पूनामां मलेला-तेवखतेज तेमना परिचयथी मारा उपर एटली छाप पडेली के एक बंगाली अने ते पण जैनेतर होवाछताँ जैन-साहित्य विषे जे अनन्य रस धरावे छे ते नवयुगनी जिज्ञासानुं जीवतुं प्रमाण छे। तेमणे "रत्नाकरावतारिका" नो अँग्रेज़ी करेलो तेने तपासी अने छपावी देवो एवी एमनी इच्छा हती, ए अनुवाद अमे छपावी तो न शक्या पण अमारी एटली खात्री थइ के भट्टाचार्यजी-ए आ अनुवाद माँ खूब महेनत करी छे। अने ते द्वारा तेमने जैनशास्त्रना हृदयनो स्पर्श करवानी एक सरस तक मली छे। त्यारबाद एटलो वर्षे ज्यारे तेमना बंगाली लेखोना अनुवादों में वांच्यां त्यारे ते वखते भट्टाचार्यजी विषे मैं जे धारणा बांधेली ते वधारे पाकी थई अने साची पण सिद्ध थइ। श्रीयुक्त भट्टाचार्यजी ए जैनशास्त्र नुं वांचन अने परिशीलन लांबा बखत लगी चलावेलु ऐना परिपाक रुपे ज तेमना आ लेखो छे एम कहवुं जोइए, जन्म अने वातावरण थी जैनेतर होवाछतां तेमना लेखो माँ जे अनेकविध जैन विगतो नी यथार्थ माहितीछे अने जैन विचारसरणीनो जे वास्तदिक स्पर्श छे, ते तेमना अभ्यासी अने चोकसाइ प्रधान मानसनी साक्षीती पुरी पाडे छे। पूर्वीय तेमज़ पश्चिमीय तत्त्वाचिंतननुं विशालवाचन एमनी M. A. डीग्रीने शोभावे तेवुं छे अने एमनुं दलिलपूर्वक निरुपण एमनी वकीली वुद्धिनी साक्षी आ-पे छे। भट्टाचार्यजीनी आ सेवामात्र जैन जनता मांज नहीं परन्तु जैनदर्शनना जिज्ञासु जैन-जैनेतर सामान्य जगत मां चिरस्मरणीय बनी रहशे।

भट्टाचार्यजीके लिखित ग्रन्थों व लेखोंकी सूची नीचे दी जाती है:—

अनुवादित

१ प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारटीका "रत्नाकरावतारिका" का अंग्रेजी अनुवाद—

मूल ग्रन्थ श्वेताम्बर न्यायग्रन्थोंमें प्रमुख ग्रंथोंमें से एक है। इसकी टीका बड़ी ही विचित्र एवं कठिन है, अंग्रेजीमें उसका अनुवाद करना कोई साधारण काम नहीं है। इस अनुवादमें भट्टाचार्यजीका दर्शनशास्त्र, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा पर असाधारण अधिकार स्पष्ट है। बहुत वर्ष पहले प्रस्तुत अनुवाद "जैनगज़ट" में धारावाहिक रूपसे बहुत समय तक निकला था। अब आपका उसे पुनः शुद्धि और वृद्धि कर स्वतंत्र ग्रंथरूपसे प्रकाशन करनेका विचार है, पाश्चात्य दर्शनोंके साथ समन्वय-सूचक व तुलनात्मक टिप्पणियें आप शीघ्र ही लिखेंगे। सिंघी-ग्रन्थमालासे उसके प्रकाशनका प्रबन्ध कर भट्टाचार्यजीके उत्साहको बढ़ानेका श्रीमान् बहादुरसिंहजी सिंघी व मुनि जिनविजयजीसे अनुरोध है।

मौलिक रचनाएँ

२. Lord Mahavira पृ० ३८

३. Lord Parsva पृ० ४०

४. Lord Arishta nemi पृ० ६०
प्रकाशक "जैनमित्रमंडल, देहली।" प्रकाशन सन् १९२६–१९२८–१९२९

५. Divinity in Jainism (जैनगज़ट मद्राससे प्रकाशित)

६. A comparative Study in Indian science of thoughts from the Jain stand point; (प्रका० The Indian Philosphy and religion, page 129–136)

७. The Jain Theory of space (प्रका० उपर्युक्त पृ० ११५ से १२० जैनगज़ट फरवरी १९२७)

८. The theory of Time in Jain Philosophy पृ० १० (जैनगजट १९२७ फरवरी)

९. Ancient concepts of matter:- Review of philosophy and religion V. III N. I. P. 13 (जैनगजट मार्चसे दिसम्बर १९३०)

१०. First principles of Indian Ethical systems:-The Philosophical Quarterly P. 308-314

११. The message of Mahavira and Krishna Vir 1929:—पृ० ७१-७६

१२. A comparative study of the Indian Doctrine of non-soul from the Jain standpoint. (प्र० The Indian philosophical congress page 129-136)

बंगला भाषा में

१. पुरुषार्थसिद्धिउपाय अनुवाद—प्र० बंग-विहार अहिंसाधर्मपरिषद्, अपूर्ण मुद्रित एवं जिनवाणी वर्ष २, पृ०६५–१०६

२. भारतीय दर्शनसमूहे जैनदर्शनेर स्थान, प्र० जिनवाणी वर्ष १, पृ० ८

३. (जैनदृष्टिए) ईश्वर—प्र० जिनवाणी वर्ष १, पृ० २५४

४. जीव—प्र० जिनवाणी वर्ष १, पृ० १२६
वर्ष २, प० १०६

९. जैनदर्शने कर्मवाद—प्र०जिनवानी वर्ष १, पृ०२०५ वर्ष २, पृ० २२

६- जैनकथा, ७ संवत ८ अब्द, ६ चन्द्रगुप्त—प्र०जिनवानी वर्ष १ पृ० ७१-२६८

१० भगवान् पार्श्वनाथ—प्र०जिनवानी वर्ष २, अंक ४, पृ० १४१

११. महामेघवाहन खारखेल—प्र० जिनवानी वर्ष २ पृ० ६६

१२. जैनदर्शने धर्मओ अधर्म—प्र० साहित्यपरिषद्-पत्रिका भाग ३४ संख्या २ सन १३३४

१३. प्रमाण— प्र० साहित्य परिषद पत्रिका भाग ३३ पृ० १८ से

१४. जैनदर्शने आत्मवृत्ति निचय—प्र० साहित्यसंवाद

इन लेखोंमेंसे कतिपय लेख पहले अंग्रेज़ीमें लिखे गये थे फिर उनका बंगानुवाद कर "जिनवाणी" पत्रिकामें प्रकाशित किये गये थे। "जिनवाणी" पत्रिकामें प्रकाशित नं० २-३-४-५-६-१०-११-१२ का गुजराती अनुवाद श्रीयुक्त सुशील ने बहुत सरस किया है और उसके संग्रहस्वरूप "जिनवाणी" नामक ग्रंथ 'ऊंझा आयुर्वेदिक फार्मेसी अहमदाबाद'से प्रकाशित भी हो चुका है, इसको जनताने अच्छा अपनाया। इससे इस ग्रंथकी द्वितीयावृत्ति भी हो चुकी है।। प्रकाशक महाशयने भी प्रचारार्थ २६० पृष्ठ के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल ।||) ही रखा है।

हिन्दी-भाषा-भाषी भी भट्टाचार्यके गंभीर लेखोंके अध्ययनसे वंचित न रहें, अतः मैंने इन लेखोंका हिन्दी अनुवाद भी करवाना प्रारम्भ कर दिया है। सिलहट-निवासी जैनधर्मानुरागी रामेश्वरजी बाजपेई ने मेरे इस कार्य में सहयोग देनेका वचन दिया है और "भारतीय दर्शनोंमें जैनदर्शनका स्थान" लेख का हिन्दी अनुवाद आपने तैयार भी कर दिया है जो शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा।

भट्टाचार्य अभी एक अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ अंग्रेज़ीमें लिख रहे हैं, जिसमें जैनधर्म सम्बन्धी सभी आवश्यक ज्ञातव्यों का समावेश रहेगा। इसके कई प्रकरण लिखे भी जा चुके हैं। जैनसमाजका कर्त्तव्य है कि इस ग्रन्थको शीघ्र ही पूर्ण तैयार करवाकर प्रकाशित करे, जिससे एक बड़े अभावकी पूर्ति हो जाय।

२ प्रो०चिन्ताहरण चक्रवर्ती काव्यतीर्थ M.A. Prof. Bethune college—

(पता—नं० २८।३ झानगर रोड, कालीघाट, कलकत्ता)

आप भी बहुत उत्साही लेखक हैं। जैनधर्मके प्रचारके लिये आपकी महती इच्छा है। संस्कृत-साहित्यमें दूतकाव्य आदि अनेकों गंभीर अन्वेषणात्मक लेख आपने लिखे हैं। जैनसाहित्यके प्रचारमें आप बहुत अच्छा सहयोग देनेकी भावना रखते हैं। आपके लेखोंकीसंक्षिप्त सूची इस प्रकार है:—

१. जैनपद्मपुराण—जिनवाणी पत्रिकामें धारावाहिक रूपसे प्रकाशित, एवं बंगबिहारधर्मपरिषदसे स्वतन्त्र ग्रन्थरूपसे प्रकाशित, मूल्य ।-)।
   आपके इस लेखकी जैन पत्रोंमें बड़ी प्रशंसा हुई थी व शोलापुर के दि० पं० जिनदास पार्श्वनाथ शास्त्रीजीने इसका मराठी अनुवाद भी प्रगट किया था।

२. जैनपुराणे श्रीकृष्ण—जिनवानी वर्ष २, अंक १ में प्रकाशित व उक्त परिषदद्वारा स्वतन्त्र रूपसे दो फरमा अपूर्ण मुद्रित।

३. जैन त्रिरत्न—"भारतवर्ष" नामक प्रसिद्ध बंगीय मासिकपत्रमें प्रकाशित अग्राहयन सं० १३३१

पृ० ८०१-७। एवं उपरोक्त परिषद-द्वारा स्वतन्त्र रूपसे जैनबालाविश्रामके छात्रगणोंके द्रव्य-सहायसे प्रकाशित।

इस निबन्धका हिन्दी अनुवाद भी ट्रैक्टरूपसे आत्मानंद जैन ट्रैक्ट-सोसायटीसे प्रकाशित हुआ था।

४. जैनधर्मेर वैशिष्ट्य—भा०व०दि०जैनपरिषद बिजनौर से जैन ट्रैक्ट नं०१ रूपसे प्रकाशित,श्रीयुत कामताप्रसादजी जैनके प्रयत्न एवं सूरतनिवासी मूलचंद किशनदास कापड़ियाके आर्थिक सहायसे प्रकाशित पृ० १५। इसका हिन्दी अनुवाद भी उपर्युक्त सोसायटी द्वारा प्रकाशितहो चुका है।

५. जैन दिगेर दैनिक षट्कर्म—साहित्य परिषद् पत्रिका भा० ३१ पृ० ७२६–७३६ में प्रकाशित। इसका भी हिन्दी अनुवाद उपर्युक्त सोसायटी द्वारा छप चुका है।

६. जैनदिगेर षोडश संस्कार—प्रका०विश्ववानी १३३४ आषाढ़ पृ० १६०-६४।

८. रक्षाबन्धन (उपाख्यान)—प्र० एजुकेशन गजट १३३१ ता० २०-२७ आषाढ़ पृ० १२।४४ व १०६।११०

६. दीपालिका ... प्र० एजुकेशन गज़ट१३३१ ता:१३ पृ० २६६–७१

१०. हिन्दूओ जैन कालविभाग—प्र० 'कायस्थसमाज' १३३२ भाद्र पृ० २६६, २७२

११. पार्श्वनाथ चरित्र—प्र०'तत्त्वबोधिनी' पौष १८४६ पृ० २६६-६८, चैत्र पृ० ३३६–३८, जेष्ठ १८४७ पृ०५०–५३,कार्तिक पृ०२१७–२१६। इसे स्वतन्त्र ट्रैक्ट रूप से प्रकाशित करना चाहिये।

१२. परेसनाथ—प्र० 'शिशुसाथी' पौष १३३३ पृ० ३५६–६१

अंग्रेजी में

१३. Need of the study of Jainism—Vir VIII N. I. अक्टूबर १६३५ पृ०३७–३६

१४. Jainism in Bengal—Vir V. III N. 5-12-3 पृ० ३७०-७१

१५. Tradition about Vanaras and Raksasas—Indian Historical quarterly V. I. पृ०७७६–८१

१६. Pareshnath—Sanskrit Collegiate School Magazine. जनवरी १६२५ भा०२ संख्या १

१७. समालोचनाएँ—कई जैन ग्रन्थोंकी इण्डियन *हिस्टोरीकल क्वार्टरली, इण्डियन कलचर व मोडर्न* रिव्यूमें प्रकाशित।

उपर्युक्त सूची भेजने व कई बंगाली विद्वानोंके पते सूचित करने व पत्रव्यवहारद्वारा चक्रवर्ती महोदयसे मुझे अच्छी सहायता मिली है, एतदर्थ आपको धन्यवाद देता हूँ।

३ श्रीसरतचन्द्रघोषाल M.A. B. L. District Magistrate Coochbihar—

भट्टाचार्यजीकी भांति आपका भी जैनदर्शनसम्बन्धी अध्ययन बहुत विशाल एवं गंभीर है! श्री भट्टाचार्यजीको प्रकाशन अव्यवस्थाके कारण लिखनेकी इतनी अनुकूलता नहीं रही और आपको बहुत अधिक अनुकूलता मिली अब भी है, अतएव आपने बहुत अधिक कार्य किया है। आपके विशाल कार्यकी ओर देखा जाय तो सब बंगीय विद्वानोंसे अधिक जैनीज़मके विषयमें आपने लिखा है। अजिताश्रम लखनऊसे प्रकाशित The sacred books of the Jain series

के आप जनरल-एडीटर हैं, इस ग्रन्थमालासे १० दिगम्बर ग्रंथ अंग्रेज़ी अनुवाद सहित प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें द्रव्यसंग्रह आपके द्वारा अनुवादित भी है। आपके मुख्य कार्य-कलापकी, जोकि जैनदर्शनके सम्बन्धमें किया है, सूची नीचे दी जाती है। दि० साधुओंके नगरों में विहार-प्रतिबन्धक आन्दोलनके समयतो आपने एक महत्वपूर्ण लेख लिखकर दिगम्बरत्वके औचित्यकी ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसके फलस्वरूप वह प्रतिबन्ध उठा दिया गया है।

अनुवादित ग्रन्थ

१. द्रव्यसंग्रह-सटीक, अंग्रेजीमें अनुवादित—प्र० उपर्युक्त ग्रन्थमालाका प्रथम पुष्प प्रकाशन—सन् १६१७, मूल्य ५॥)
२. परीक्षामुख—दि० न्याय ग्रन्थ, प्र० जैनगजट
३. प्रमाण मीमांसा—अंग्रेजी अनुवाद, प्र० जैनगजट १६१५
४. प्रश्नव्याकरण— ,, ,, प्र० ,, १६१५
५. बृहद्रतिदत्तकथा—अंग्रेजी अनुवाद, प्र० जैन गजट १६१५
६. The Digambar Saints of India.
७. Abuse of Jainism in non-Jain Literature.
Published in Jain Gazette 1917 Vol. XIII P. 144.
८. Gommata Sara. Published in Digambar Jain.
६. The Rules of ascetics in Jainism. (Jain Sidhant Bhaskar. वर्ष २, किरण ४)
१०. आचार्य्य जिनसेन (बंगला)—प्र०भारतवर्ष।
११. द्वादशानुप्रेक्षा (बंगला)—प्र० जिनवाणी।

४ प्रो० अमूल्यचरण विद्याभूषण, प्रो० विद्यासागर कॉलेज कलकत्ता—

(पताः—नं० ५ जदुमित्रलेन, कलकत्ता)

आप बहुत वर्षोंसे "बंगीय महाकोष" के सम्पादन में लगे हुए हैं। इस कोषमें जैनदर्शनके अनेक शब्दों पर विस्तृत विवेचन किया गया है। कोषके अतिरिक्त स्वतंत्र प्रकाशित जैनदर्शन सम्बन्धी लेखोंमें कतिपय ये हैं—

१. Jain Jatakas—प्र० मोतीलाल बनारसीदास लाहौर,
२. Culture, Origin of Jainism.
३. Queen, The History of the Jain Sects, Parsvanath & Mahavir.
४. National Council of Education. Lecture on Syadwad.
५. जैनधर्म—प्र०नव्यभारत।
६. विजयधर्मसूरि—प्र० वानी १३१७ बंगला।

आपकी इच्छा है कि अपने कोषमें जैनदर्शनके सभी मुख्य एवं रूढ़ शब्दों पर विस्तारसे विवेचन हो पर यह कार्य बिना जैनविद्वानोंके सहयोगके नहीं हो सकता। आपने हमसे यहाँ तक कहा था कि यदिबंगला या अँग्रेज़ी भाषाविद् जैनविद्वान् शब्द-विवेचन लिख भेजें या हम उन्हें लिख भेजें वे उसको पढ़कर शुद्धि-वृद्धि कर भेजें ताकि हमारे कोषमें अपूर्णता एवं भूल भ्रान्ति न रहने पावे। आशा है योग्य विद्वान उन्हें सहयोग देंगे।

५ प्रो० सातकोडी मुखर्जी, प्रो० कलकत्ता युनीवरसिटी—

(पता—नं० ११२ वृन्दावनचरणमल्लिकलेन कलकत्ता)

आपका अध्ययन भी बहुत गंभीर है, जैनधर्मसे आपका बहुत अनुराग है। आपके लिखित निबंध ये हैं—

१. अनेकान्तवाद—प्र० विश्वकोष द्वि० आवृत्ति

२. जैनधर्मेनारीर स्थान—प्र० रुपनंदा (अग्रहायन-पौष १३४४)

३. The Status of women in Jain Religion.

४. The doctrine of Relativity in Jain Metaphysics.

५. सभापति भाषण—इंडियन कलचर कान्फरेन्स; जैन और बौद्ध विभाग

६. प्रो० हरिमोहन भट्टाचार्य प्रो० आसुतोष कालेज (पताः—नं० ३ तारारोड़ कालीघाट कलकत्ता)

आपके लिखे हुए निबन्ध ये हैं:—

१. The Jain conception of Truth and reality (Proceedings of Indian Philosophical Congress. 1925)

२. The Jain Theory of knowledge & errors. (प्र० जैनसिद्धान्तभास्कर १६३८ जून)

३. The Jain Theory of Existence & Evolution (प्र० इण्डियन कलचर १६३८ एप्रिल)

४. Studies in Philosophy (प्र० मोतीलाल बनारसीदास लाहौर)

इस ग्रंथमें जैनदर्शनके सम्बन्धमें कई बातें लिखी हैं।

५. स्याद्वाद—प्र० साहित्यपरिषदपत्रिका भा० ३०, पृ० १४३ भा० ३१ पृ० १

६. Jain critique of the Sankhya & the Mimansa theories of the self relation to knowledge. प्र० जैन सि०भास्कर भाग ६, कि० १

७ डा० विमलचरणलाह M.A. B.L. PH.D.—(पता—नं० ४३ कैलास बोस स्ट्रीट, कलकत्ता)

आप कलकत्तेके सुप्रसिद्ध जमींदार, पत्रसम्पादक एवं साहित्यिक विद्वान हैं। भारतीय प्राचीन संस्कृतिके अन्वेषणमें आपकी बड़ी दिलचस्पी है। बौद्ध एवं जैनसाहित्यसे आपका बहुत प्रेम है। आपसे मैं दो बार मिला था और आपके लिखित जैनसाहित्य-सम्बंधी लेखोंकी सूची मांगी थी और आपने कुछ समय बाद देनेकी स्वीकृति भी दी थी पर दो तीन बार फिरसे सूचना देने पर भी साहित्य-कार्योंमें विशेष व्यस्त होनेसे आपसे सूची नहीं मिल सकी अतः मुझे ज्ञात निबन्धोंकी सूची देकर ही संतोष मानना पड़ता है।

१. Mahavira (His Life and Teachings Page 113, प्रकाशक Lunac & Co; 46, G.Russel Street London W. C. I. 1939. स्व० बाबू पूर्णचंद नाहरको समर्पित। प्रस्तुत ग्रन्थ दो विभागोंमें विभक्त है—१ महावीरकी जीवनी २ उनके उपदेश। जैन संस्कृतिका तथाविध ज्ञान न होनेसे इस ग्रंथमें कई भूल भ्रान्तियें रह गई हैं, तो भी आपका परिश्रम सराहनीय है।

२. Distinguished Menarar (?) women in Jainism.—प्र० इंडियन कलचर V. II 669 V. III 89. 343.

३. The Kalpa Sutra प्र० जैनसिद्धान्त भास्कर भा० ३, किरण ३-४

४. Studies in the Vividha-Tirtha Kalpa (प्र० जैनसिद्धान्त भास्कर भा०४ कि०४ पृ०१०६)

८ प्रो० प्रबोधचंद बागची, कलकत्ता विश्वविद्यालय
(पता—नं०६ रुस्तमजी स्ट्रीट, कालीगंज, कलकत्ता)
आपकी निबन्ध-सूची निम्न प्रकार है—

१. The Historic beginnings of Jainism Part III, 1929.

(प्र० सरआशूतोष मुखर्जी सिलवर ज्युबली वोलयूम III Part III 1927)

२. One the Purvas प्र० Journal of Department of letters V.XIV1929.

आप चीनी भाषाके विशेषज्ञ हैं और जैन बौद्ध धर्मसे भी प्रेम रखते हैं।

९ प्रो० वेणीमाधव बुड़वा M. A. D. litt. (Lon)
आपकी निबन्ध-सूची इस प्रकार है—

1. The Ajvikas (Journal of the Department of Letters, Calcutta University, Vol. II 1120)
2. A History of Pre-Budhist India Philosophy of Mahavira published by Calcutta University 1921 (London Doctorate)
3. Historical Background of Jinology. and Buddhology(Calcutta Review 1924.)
4. Old Brahmi Inscriptions in Udayagiri and Khandagiri Caves. (Calcutta University Published 1929)
5. Minor Old Brahmi Inscriptions in the Udaigiri and Khandagiri Caves. Revised Edition (Indian Historical Quarterly 1938.)

१० सुरेन्द्रनाथदास गुप्त—
(पता—महानिर्वाण रोड बालीगंज कलकत्ता)
History of Indian Philosophy नामक ग्रंथमें आपने जैनदर्शनके सम्बंधमें कई बातें लिखी हैं।

११ प्रो० सुरमा मित्र M. A.—
(पता--नं०६ हिन्दुस्तान पार्क बालीगंज)
जैनदर्शनका आपने बहुत गंभीर अध्ययन किया है, बंगीय महिलाओंमें जैनदर्शन-प्रेमी एक मात्र आप ही हैं। आप जैनधर्मके सम्बंधमें एक ग्रंथ भी लिख रही हैं।

१२ डा० आसूतोष शास्त्री M. A. PH. D.
(पता—नं० २ C नवीन कुंडुलेन, कालेजऐ)
Studies in Post Sankara Diabecties में आपने जैन दर्शनके सम्बंधमें भी कुछ बातें लिखी बतलाते हैं।

१३ सतीशचन्द्र चटर्जी M.A., PH. D.—
(पता—५६ B हिंदुस्तान पार्क)
The Nyaya Theory of knowledge नामक आपके ग्रंथमें जैनन्याय-सम्बन्धी चर्चा है।

१४ विनयकुमार सरकार प्रो० कलकत्ता युनिवर्सिटी—
(पता—पुलिस होसपिटल रोड)
Somedeva (The Political Philosopher of the tenth century) नामक निबन्ध आपका लिखा हुआ है, जो इण्डियन कलचर (V. II Page 801) में मुद्रित हुआ है।

१५ स्व० सतीशचन्द्र विद्याभूषण—भारतीय न्यायशास्त्रके आप लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे, जैन न्यायसाहित्यका भी आपने गंभीर अध्ययन किया था और अपने ग्रंथमें जैनलोजिकके सम्बंधमें विस्तारसे

आलोचन किया था। उसका हिन्दी अनुवाद कई वर्ष पूर्व "जैनहितैषी" पत्रमें लगातार कई अंकोंमें प्रकाशित हुआ था। इण्डियन रिसर्च सोसायटी द्वारा सन् १६०६ में आपके द्वारा सम्पादित एवं अंग्रेजीमें अनुवादित 'न्यायावतार' मूल-वृत्ति सह प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त महो० यशोविजयजी गणीके सम्बंधमें आपका एक लेख भी प्रकाशित हुआ था। जैन-सम्बंधी आपके लिखित लेखोंके नाम व प्रकाशनका पता इस प्रकार है:—

1. Maharaja Manika Lekha
2. Yasovijaya gani (About 1608 1688 A. D.) प्र० एसोटिक सोसायटी बंगाल जनरल N.3 VI
3. The Sarak Caste of India identified with the Serike of Central Asia-proceedings, A. S. B. 1903.
4. Pariksamukha Sutra—Bib. Ind.
5. TattvarthadhigamaSutra— Bib.Ind·
6. History of Indian Logic ग्रंथमें Jain Logic Page 157-224
7. न्यायवतार, मूल-वृत्ति इंगलिश अनुवा० सहित—प्र० इण्डियन रिसर्च सोसायटी सन् १६०६

१७ स्व० कृष्णचन्द्र घोष "वेदान्तचिन्तामणि"

१ बाबू पूर्णचंद्रजी·नाहर लिखित An Epitom of jainism के सहयोगी प्रणेता।

१७ स्व० हरिहर शास्त्री—

आपके लिखित दो लेखोंका पता चला है—

१ जैनपुराणे वर्णित कृष्णचरित्र—

२ जैनन्याय—बंगीय साहित्य परिषद्के १४वें अधिवेशनमें पठित

१८ शिवचंद्र शील—

आपके निबन्धका नामादिक इस प्रकार है—

१ दीपावली ओ भ्रातृद्वितीया पर्व—प्र० साहित्य परिषद पत्रिका भा० १४ पृ० ५१

१८ रामदास सेन M. R. A. S.—

आपके दो निबंध हैं—

१ जैनधर्म—प्र० "ऐतिहासिक रहस्य" पत्रिका

२ जैनमत-समालोचना—,, भा० ३ पृ० २१७

२० सम्पादक "उद्बोधन"-आपके द्वारा लिखित निबंधका नाम 'जैनसम्प्रदाय' है—जो "उद्बोधन" भा० १४ पृ० ७६२ भा० १५ पृ० १०५ पर मुद्रित हुआ है।

२१ उपेन्द्रनाथ दत्त—आपके द्वारा लिखित तथा अनुवादित निबंधोंकी सूची इस प्रकार है—

१ जैनधर्म

२ जैनधर्म (मू० लोकमान्य तिलक) अनुवाद

३ जैनतत्वज्ञानओ चारित्र —अनुवाद

४ जैनसिद्धांत दिग्दर्शन —अनुवाद

५ जैनसामयिक पाठ स्तोत्र—भावानुवादित

६ जिनेन्द्र-मत-दर्पण —अनुवादित

७ सार्वधर्म —अनुवादित

ये सभी ट्रैक्ट बंगीय सर्वधर्म परिषद काशीसे प्रकाशित हुए हैं। विशेष जाननेके लिये देखें मेरा "बंगला भाषामें जैन साहित्य" शीर्षक लेख, जो कि ओसवाल नवयुवक वर्ष ८ अंक १० में प्रकाशित हो चुका है।

२२ ललितमोहन मुखोपाध्याय—आपने 'जैन इतिहास समिति' का अनुवाद किया है।

२३ हरिचरनमित्र—आपके द्वारा अनुवादित "श्रावक दिगेर आचार"नामक ट्रैक्ट प्राचीन श्रावकोद्धारिणी सभा कलकत्तासे प्रकाशित हुआ था।

२४ स्व० नगेन्द्रनाथ वसु—

(पता—विश्वकोषलेन, कलकत्ता।)

आपके सम्पादित विश्वकोषमें जैनधर्मके सम्बंधमें बहुतसे लेख प्रकाशित हुए हैं। एवं एक स्वतंत्र लेख भी आपके द्वारा लिखित अवलोकनमें आया है। १ जैन पुरुष काहिनी—प्र० साहित्य परिषद् पत्रिका भा ७ पृ० ७०

२५ विभूति भूषणदत्तः—आप गणित शास्त्रके विशेषज्ञ हैं आपके लेख ये हैं—

१ जैन साहित्योनाम संख्या—प्र० बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका भा० ३७ पृ० २८ से ३६

२ Mathematics of Nemichandra प्र०—जैन सि० भा० भा० २ कि० २

३ A lost Jaina Treatise on Arithmatic—प्र० जैन सि० भा०२, कि०३

२६ सुकुमार रंजनदास M.A., PH. D.—

The Jaina calendar आपने लिखा है प्र० जै० सि० भा० भा०४ कि० २

२७ प्रमोदलाल पाल—आपका लेख है-

Jainism in Bengal—प्र०इण्डियन कलचर (Vol III) पृ० ५२४

२८ ईश्वरचन्द्र शास्त्री—

(पताः—नं० १ मार्कस स्क्वायर कलकत्ता)

१ नीतिवाक्यामृत—दि० सोमदेव सूरि रचित प्रस्तुत नीति ग्रन्थ पर आपने संस्कृत एवं बंगलामें टीका लिखी है, जो कि अप्रकाशित है।

२ जैनतत्त्वसारसंग्रह—आरासे प्रकाशित

२९ मणिलालसत्य—(पता—प्रवर्त्तक संघ, चंदननगर)

१ महावीर—आपके "गुरुगुरु" ग्रंथके पृ०१० से १६ में सचित्र भगवान् महावीरका परिचय छपा है पर इसमें १ पार्श्वनाथके शिष्य श्वेताम्बर और महावीरके शिष्य दिगम्बर हुए तथा २ सिद्धार्थ यक्षके अनुग्रहसे वीरकी बुद्धि उत्कर्ष को प्राप्त हुई आदि कई भ्रान्त बातें लिखी हैं।

३० रमेशचन्द्र मजुमदार, वाइस चान्सलर ढाका यूनिवर्सिटी—

आपका लेख है 'बौद्ध ओ जैनसाहित्ये कृष्णचरित्र' प्र० "पंच पुष्प" पत्रिका भाद्र १३३८

३१ कालीपद मित्र, प्रिन्सिपल डी०जी०कालेज मुंगेर—

आप जैन साहित्यसे बहुत प्रेम रखते हैं, अपने अध्ययनके सुफलसे समय समय पर जैन-सम्बन्धी लेख भी लिखा करते हैं। आपके प्रकाशित लेखोंकी नामावली इस प्रकार हैः—

१ Teachers and disciples —प्र० मोडर्न रिव्यू १९३७ नवम्बर

२ Magic and Miracle in Jaina literature प्र० इण्डियन हिस्टोरिकल क्वारटरली

३ The Previous Births of Sejjans—प्र० भास्कर भा० ४ पृ० ४५

४ Knowledge and Conduct in jain Scripture—प्र०जैन सिद्धान्तभास्कर भा० ४, कि० ३

५ Note on Devanuppiya—प्र० जैन सिद्धान्तभास्कर भा० ५ कि० ३

३२ यदुनाथसिंह, प्र० मीराट कालेज, पंजाब—

आपके निबन्ध ये हैं—

1. Indian Psychology Perception (By Jadunath Singh) Published by Kegan Paul, Trenich Trub-

ur & co. London 1934 at 15$.

2. Indian Realism—Published 1938 at 10s. 6d.

३३ अमृतलाल शील— (पता—न्युलेन हैदराबाद) आपका लेख है 'जैनदिगेर तीर्थंकर' —प्र० "मानसी ओ मर्मवानी" पृ० १०

३४ अमूल्यचन्द्रसेन, (पता—विद्याभवन विश्वभारती शांतिनिकेतन)—आपके लेखका नाम है Schools and Sects in jain Literature—प्र० विश्वभारती।

इनके अतिरिक्त अन्य कई विद्वानोंने भी जैनधर्म सम्बन्धी लेखादि लिखे हैं ऐसा कई व्यक्तियोंसे मौखिक पता चला था पर उन्हें कई पत्र देने पर भी प्रत्युत्तर नहीं मिलनेसे इस लेखमें वह उल्लेख न कर सका।

प्रो० विधुशेखर भट्टाचार्य, डा० कालीमोहन नाग हरिन्द्रनाथदत्त अटर्नी आदि बंगीय विद्वानोंसे मैं मिला था यद्यपि इन महानुभावोंने अभी तक जैनदर्शनके सम्बंध में स्वतन्त्र कोई निबन्धादि नहीं लिखा है फिर भी इनकी जैनधर्मके प्रति असीम श्रद्धा है। कई कई विद्वान् तो जैनधर्मके प्रचारके सम्बन्धमें विचार विनिमय करने पर हार्दिक दुःख प्रगट करते हुए कहते है कि "बौद्ध धर्मके सम्बन्धमें तो नित नये २ विचार पत्र पत्रिकाओंमें आये दिन पढ़नेको मिलते हैं पर जैनी लोग कर्त्तव्य विमुख हो बैठे हैं, अन्यथा कभी संभव नहीं कि ऐसे आदर्श धर्मके अनुयायी १४ लाखमेंही सीमित रहें।"

पादरियों तथा आर्य समाजियोंने प्रचार कार्यके बल पर आज क्या कर दिखाया है। बौद्धधर्म जो शताब्दियों से भारतसे दूर हो गया था पुनः प्रचारित हो रहा है तब जैनधर्म दिनोदिन अवनतिकी ओर अग्रसर है इसका एक मात्र कारण व्यवस्थित प्रचार-कार्यका अभाव है। बंगाल जैसे शिक्षित प्रान्तमें इसका प्रचार बहुत कम समयमें अच्छे रूपमें हो सकता है। जैनोंको अब कुम्भ कर्णी निद्रा त्याग कर कर्त्तव्य-पालनमें कटिबद्ध होजाना चाहिये।

प्रिय पाठक गण! इस लेखको पढ़कर आपको विदित ही हुआ होगा कि समुचित साधन, प्रोत्साहन नहीं मिलने पर भी इन विद्वानोंने कहां तक कार्य किये हैं और साधनादि मिलने पर वे कितने प्रेम और उत्साह के साथ जैन साहित्यकी प्रशस्त सेवा कर सकते हैं।

अब किन किन उपायों द्वारा बंगीय विद्वानोंको समुचित साधन व प्रोत्साहन मिल कर उनके द्वारा बङ्ग-प्रदेशमें जैनधर्मका प्रचार हो सकता है, इस विषयमें कुछ शब्द लिखे जाते हैं।

१ जैनग्रन्थोंका एक विशाल संग्रहालय हो और उसमें यह सुव्यवस्था रहे कि प्रत्येक पाठकको सुगमता-पूर्वक पुस्तकें मिल सकें। यदि भ्रमणशील पुस्तकालय हों तो फिर कहना ही क्या? कलकत्तेके जैन पुस्तकालयोंमें सुप्रसिद्ध नाहरजीका संग्रहालय सर्वोत्कृष्ट है। यदि ऐसा पुस्तकालय सर्वोपयोगी और सार्वजनिक हो सके तो निस्सन्देह एक बड़े भारी अभावकी पूर्ति हो सकती है। प्रत्येक सुप्रसिद्ध व उपयोगी ग्रन्थकी दो दो तीन तीन प्रतियाँ पुस्तकालयमें रहना आवश्यक हैं; क्योंकि जो विद्वान उसकी एक प्रति मनन कर कुछ लिखनेके लिये ले गये अतः उनके यहांसे उसका देरीसे वापिस प्राप्त होना स्वभाविक है, इसी बीच अन्य विद्वानोंको उसकी विशेष आवश्यकता हुई तो अन्य प्रति हो तो उन्हें भी मिल सके। अच्छे अच्छे ग्रन्थोंको समय पर

संग्रहीत करते रहनेका भी प्रबन्ध होना चाहिये एवं इस पुस्तकालयकी सूचना प्रसिद्ध सभी संवादपत्रोंमें दे देना आवश्यक है। कलकत्तेमें बंगीय विद्वानोंका खासा जमाव है। अतः पुस्तकालय कलकत्तेमें ही होना विशेष लाभप्रद है।

पुस्तकालयका लाइब्रेरीयन (अध्यक्ष) अनुभवी विद्वान होना चाहिये, जिससे विद्वानोंकी माँगका समुचित प्रबंध कर सके। अच्छे २ ग्रन्थ जो वे लोग मांगें और अपने पुस्तकालयमें नहीं हों उन्हें तुरन्त मंगाने एवं हो सके तो अन्य पुस्तकालयोंसे उन्हें प्राप्त करनेका प्रबन्ध हो सके तो उसका प्रबन्ध कर सके और जो ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुए हैं उनको भी विशेष आवश्यकता होने पर भंडारोंसे मंगा कर पाठकोंको ज्ञान-जिज्ञासाको पूर्ण कर सके।

मेरे ध्यानमें ऐसा व्यवस्थित पुस्तकालय आगरेका विजयधर्मसूरि-ज्ञान-मंदिर है। इधर कई वर्षोंसे प्रकाशित पुस्तकोंकी उसमें कमी है उसकी पूर्तिकी जासके और विद्वानोंको बाहर भेजने आदिका सुप्रबन्ध हो तो इस ज्ञानमन्दिरसे बहुत लाभ हो सकता है। ऐसे ही जैन-सिद्धान्त-भवन आरा, ऐल्लक पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बई, ब्यावर, झालरपाटन आदि दिगम्बर-पुस्तकालयों से भी सहयोग प्राप्त कर लेना परमावश्यक है। उनके सूचीपत्रोंकी नकल मुद्रित हो तो मुद्रित प्रति कलकत्तेके पुस्तकालयमें रखी जाय और समय २ पर आवश्यक ग्रंथ वहाँसे मंगाकर भी विद्वानोंकी मांग पूर्णकी जाय तो बड़ा भारी ज्ञानप्रचार हो सकता है। विद्वानोंको पाठ्य एवं लेखन-सामग्रीकी सुविधा प्राप्त होने पर उनकी लेखनी बहुत अधिक काय कर सकेगी। आशा है जैन-धर्म-प्रचारके प्रेमी धनी सज्जन इस परमावश्यक योजनाकी ओर अवश्य ही ध्यान देंगे। और इसे अति शीघ्र कार्यरूपमें परिणत करके प्रचारकार्यमें हाथ बटावेंगे।

हाँ, इतने विशाल पुस्तकालयके लिये बड़े भारी अर्थसंग्रहकी आवश्यकता है। पर जैनसमाजके अन्य पुस्तकालयों एवं ग्रंथसंग्रहोंमें जिन जिन ग्रंथोंकी अधिक अतिरिक्त प्रतियाँ पड़ी हैं उनको वे इस संग्रहमें प्रदान करदें एवं जैनग्रन्थ प्रकाशक अपने प्रकाशनकी १-१ प्रति इसको भेट देदें तो हज़ारों रुपयेके ग्रंथ सहज संग्रहीत हो सकते हैं। इसी प्रकार पत्रसम्पादक एवं प्रकाशक महाशय भी पत्र फ्री भेज सकते हैं, ऐसे उपयोगी पुस्तकालयके लिये कोई अधिक कठिनता नहीं होगी कार्यकर्त्ता सेवाभावी और प्रभावशाली अनुभवी हों तो बहुत थोड़े अर्थव्ययसे बहुत अच्छा संग्रह एवं व्यवस्था हो सकती है।

(२) केवल एक पुस्तकालय स्थापनसे ही कार्य नहीं चलेगा, साथ साथ जैनेतर अन्य प्रसिद्ध पुस्तकालयोंको भी जैनधर्मके उत्कृष्ट ग्रन्थोंकी प्रतियाँ देना परमावश्यक है, ताकि उस पुस्तकालयके ग्रन्थोंके पाठक विद्वानोंका भी जैनधर्मके आदर्श ग्रंथोंकी ओर ध्यान आकर्षित हो। कलकत्तेमें * विद्वानोंके केन्द्रस्थानीय पुस्तकालयोंमें इम्पीरियल लायब्रेरी, विश्वविद्यालय एवं एशियाटिक सोसायटीका पुस्तकालय, संस्कृत कॉलेज ग्रंथालय, बंगीय-साहित्य-परिषद् पुस्तकालय मुख्य हैं। इनमें उत्तमोत्तम उपयोगी जैनग्रंथोंकी १-१ प्रति अवश्य देदेनी चाहिये। या उनके पुस्तकाध्यक्षोंको उन ग्रंथोंके संग्रहकी प्रेरणा करना चाहिये।

(३) पुस्तकालयके अन्दर एक अभ्यासक मंडल भी स्थापित किया जाय। बंगीय विद्वानोंको जैनधर्म सम्बंधी लेख-निबंध लिखनेकी प्रेरणाकी जाती रहे, प्रत्येक रविवारको भाषणका आयोजन हो जिनमें जैनधर्मके विद्वानों एवं अभ्यासी जैनेतर विद्वानोंका भाषण हो, अभ्यासियोंके भाषण लिखितरूपसे हों तो विशेष अच्छा हो। यानी वे प्रकाशित भी किये जासकें और समय भी कम लगे। मौखिकभाषण देनेवाले विशेष विद्वानोंके भाषणोंका सार भी शोर्टहेंडसे लिखा जाकर प्रकाशित किये जानेका प्रबन्ध होनेसे वह कार्य स्थायी एवं विशेष व्यापक होगा। सुन्दर विशिष्टनिबंध-लेखकोंको पारितोषिक दिये जानेका प्रबन्ध होना भी उचित है। जिससे वे समुचित उत्साहित हों। उन निबंधोंको जैन एवं

---

* देखें, मेरा 'कलकत्तेके जैन पुस्तकालय' शीर्षक लेख, प्र० ओसवाल नवयुवक वर्ष ८ अंक ३

जैनेतर विशिष्ट पत्रोंमें प्रकाशित किये जानेका प्रबन्ध रहनेसे प्रचारकार्य बहुत शीघ्र आगे बढ़ेगा। निबंधोंके प्रकाशनके पूर्व अच्छी तरह परीक्षा करलेनी चाहिये ताकि किसी लेखकने कोई भूल-भ्रान्ति की हो तो वह पहले ही सुधारी जा सके, इससे लेखकको अपनी भूलें विदित हो जायँगी और प्रकाशन भी भ्रान्तिरहित होगा।

इसी प्रकार बंगीय विद्वानोंके लिखित ग्रंथोंको भी सिन्घी जैनग्रंथमाला आदि द्वारा प्रकाशित करनेका प्रबन्ध होना चाहिये, ताकि लेखकको प्रकाशकोंके ढूंढने-की चिन्ता न हो।

(४) एक सामयिक मासिक पत्र भी पूर्व प्रकाशित "जिनवाणी" की भांति प्रकाशित किया जाय, जिसमें हिन्दी, बंगला और अँग्रेज़ी लेखोंको प्रकाशित किया जासके। सामयिकपत्रसे प्रगति बहुत फलवती होती है और प्रचारका प्रशस्तमार्ग सरल हो जाता है।

(५) कलकत्ता विश्वविद्यालयमें एक जैन चेयरकी बड़ी आवश्यकता है, जिसमें जैनदर्शन, साहित्य, कला-आदिकी समुचित शिक्षा जैनविद्वान द्वारा बंगीय जैन, जैनेतर छात्रोंको दी जाय। योग्य छात्रोंको छात्रवृत्ति भी अवश्य दी जाय।

(६) धर्मप्रचारका कार्य जैसा त्यागी विद्वान मुनियोंसे हो सकता है वैसा अन्य से नहीं, उनके ज्ञान एवं चारित्रका प्रभाव भी बहुत अच्छा पड़ता है। जैन-दर्शन सम्बन्धी शंकाओंका बंगीय विद्वान उनसे निराकरण कर सकते हैं और भी उनके उपदेशसे कई विद्वान प्रचार एवं साहित्य-सेवामें जुट सकते हैं साथ ही, आदर्श सिद्धान्तोंका शिक्षितसमाजमें सहज प्रचार हो सकता है, पर खेद है कि हज़ारों जैनी आसाम-बंगालमें रहते हैं पर उनकी प्रगति इतनी सीमित है कि उसका दूसरोंको पता नहीं चलता। श्वे० जैन मुनि एवं दिगम्बर विद्वान बंगला और अँग्रेज़ी भाषाका आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके ग्राम ग्राममें घूमें तो पुनः जिस बंगाल-विहारमें एक समय जैनधर्म ऊँचे शिखर पर चढ़ा हुआ था वह फिरसे नज़र आजाय, कमसे कम हज़ारों मनुष्य मांस-मत्स्य-भक्षणका त्याग कर सकते हैं। जिससे लाखों करोड़ों जीवोंको अभयदान मिले। आशा है वे अब अपना कर्तव्य सँभालेंगे।

(७) कई स्थानोंमें मुनिमहाराजोंके जानेमें नाना असुविधायें हैं, उन स्थानोंमें कतिपय प्रचारक विद्वानों द्वारा कार्य होसकता है। अतः २-४ प्रचारकोंकी भी नियुक्ति परमावश्यक है, जिससे प्रचारकार्य व्यापक एवं विशिष्ट हो।

इसी प्रकार अल्प मूल्यमें या अमूल्यरूपसे जैन दर्शनके सारभूत कई ग्रंथोंका प्रचार इंगलिश एवं बंगला भाषामें करने द्वारा तथा अन्य विविध योजनाओं द्वारा पुनः पूर्ण प्रयत्न कर जैनधर्मका संदेश सर्वत्र प्रसारित करना परमावश्यक है। मैंने इस लघुलेखमें दिशासूचक रूपसे महत्वकी कतिपय योजनाओंको ही जैन समाजके समक्ष रखा है, अन्य विद्वान एवं जैनधर्मके प्रचार-प्रेमी सज्जन अपने अपने विचार शीघ्र ही अभिव्यक्त करें, एवं समाज उन्हें कार्य रूपमें परिणत करनेमें तन मन धनसे सहयोग दे, यही पुनः पुनः सादर विज्ञप्ति है।

स्थानीय बंगीय जैन समाजका इस दिशामें प्रयत्न करनेका सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। मुर्शिदाबाद एवं कल-कत्तेके जैन भाइयोंको मैं पुनः उनके आवश्यक कर्त्तव्य-की याद दिलाता हूँ, आशा है वे इसपर अवश्य विचार करेंगे एवं अन्य प्रान्तोंके भाइयोंके सन्मुख भी आदर्श उपस्थित करेंगे।

लेख समाप्त करनेके पश्चात् नं० ५ योजनाके संबंधमें कलकत्तेकी गत महावीर जयन्ती पर श्रीयुक्त बहादुरसिंहजी सिंघीने जो विचार व्यक्त किये उनको कार्यरूपमें परिणत देखनेको मैं उत्कंठित हूँ। एवं नाहरजीके कलाभवनकी ४० हज़ारकी बहूमूल्य वस्तुएँ कलकत्तेके विश्वविद्यायके आशुतोष म्युजियमको दान-के संवाद मिले हैं। क्या ही अच्छा हो उनका पुस्तकालय भी नं० १ योजनानुसार कर दिया जाय।

अहिंसाकी कुछ पहेलियाँ

[श्री० किशोरलाल मशरूवाला]

अहिंसाके बारेमें कभी-कभी गहरे और जटिल सवाल किये जाते हैं। इनमेंसे कुछका मैं यहाँ थोड़ा विचार करना चाहता हूँ।

(१) **प्रश्न**—पूर्णतया प्राप्त किये बग़ैर संपूर्ण अहिंसा शक्य नहीं है। तो फिर, सारे समाजको या हमारे जैसे अपूर्ण व्यक्तियोंको अहिंसाकी सिद्धि किस तरह मिल सकती है?

उत्तर—कभी कभी बहुत गहरे विचारमें उतरजानेसे हम गगन-विहारी बन जाते हैं। कसरत करनेवाला हरेक व्यक्ति दौड़ती हुई मोटर रोकने, या चार-पाँच मनका पत्थर छाती पर रखने या गामाकी बराबरी करनेकी शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। फिर भी, यह मुमकिन है कि इन लोगोंसे भी बढ़कर कोई पहलवान दुनियाँमें पैदा हो। अगर इन्हींको शारीरिक शक्तिका आदर्श माना जाये तो साधारण आदमी--चाहे वह कितनी भी मेहनतसे शरीरको मज़बूत बनानेकी कोशिश करे, तो भी--अपूर्ण ही रहेगा। तब क्या आम जनताके लिए जो अखाड़े हैं वे बन्द कर दिये जायें? उत्तर साफ है कि 'नहीं'। क्योंकि अखाड़ोंका मुख्य उद्देश्य गामा जैसे पहलवानोंको ही निर्माण करना नहीं है; बल्कि साधारण दुनियांदारीमें सैकड़ों आदमियोंको जितने और जिस प्रकारके शारीरिक विकासकी ज़रूरत हो उतना और उस प्रकारका विकास जो व्यायामशाला करा सकती है उसे हम सफल संस्था कहेंगे; फिर चाहे उसके सौ सालके इतिहासमें उसमेंसे एक भी गामा या राममूर्ति भले ही न निकला हो। इन अखाड़ोंमें गामा और राममूर्तियोंका सम्मान, तथा मार्गदर्शनकी हैसियतसे उपयोग हो सकता है। लेकिन उन जैसा बननेकी सबकी महत्वाकांक्षा नहीं हो सकती। उसके उस्तादके लिए भी वह कसौटी नहीं हो सकती।

दूसरा भी एक उदाहरण ले लीजिए। सेनापतिमें युद्ध-शास्त्रकी जितनी क़ाबिलियत चाहिए उतनी हरेक छोटे अमलेमें, तथा छोटे अमलेकी जितनी क़ाबिलियत सामान्य सिपाहियोंमें हो, ऐसी अपेक्षा कोई नहीं करेगा। उसी तरह गांधीजीकी अहिंसावृत्ति हरेक कार्यकर्त्ता अपनेमें पा न सके, अथवा कार्यकर्त्ताकी लियाकत साधारण जनतामें आना संभव न हो, तो इसमें घबरानेकी कोई बात नहीं। उससे उल्टी स्थितिकी अपेक्षा करना ही ग़लत होगा। ज़रूरत तो यह खोजनेकी है कि अहिंसाकी कम से-कम तालीम कितनी और किस तरहकी होनी चाहिए? उससे अधिक लियाक़त रखनेवाला मनुष्य एक छोटा नेता, या गांधी, या सवाई गांधी, भी बन सकता है। वैसी सदभिलाषा व्यक्तियोंके दिलमें भले ही हो, लेकिन जो उस तक नहीं पहुँच सकता उसे निराश होनेकी ज़रूरत नहीं। उसके लिए परीक्षाकी कम-से-कम लियाक़त हासिल करनेका ही ध्येय रखना काफ़ी है।

(२) **प्रश्न**—जिसे क्रोध आता हो, जो गुस्सेमें

कभी बच्चोंको पीट भी देता हो, जिसकी किसीके साथ बोलचाल भी हो जाती हो, ऐसा शख्स क्या यह कह सकता है कि उसकी अहिंसाधर्ममें श्रद्धा है ?

उत्तर—हम इस वक्त जिस प्रकारकी और जिस क्षेत्रकी अहिंसाका विचार कर रहे हैं उसमें "गुस्सेके मानीमें क्रोध" और "द्वेष, वैर, ज़हरके मानीमें क्रोध" का भेद समझना ज़रूरी है। माँ-बाप, शिक्षक आदि कभी-कभी बच्चों पर गुस्सा करते हैं और सज़ा भी देते हैं। रास्ते पर, पानीके नल या कुएँ पर कभी-कभी स्त्रियोंमें बोलचाल हो जाती है। पड़ोसियोंमें एकका कचरा दूसरेके घरमें उड़ने जैसी छोटी-सी बात पर भी झगड़ा हो जाता है। बुढ़ापे या बीमारीमें अनेक लोग बदमिज़ाज हो जाते हैं और छोटी छोटी बातोंसे चिढ़ते हैं। यह सब क्रोध ही है और दुर्गुण भी, इतने परसे हम इन लोगोंको द्वेषी, ज़हरीले, या वैरवृत्तिवाले नहीं कहेंगे। उलटे, कई बार यह भी पाया जायगा कि खुले दिलके और सरल स्वभावके लोगोंमें ही इस प्रकारका क्रोध ज्यादा होता है और कपटी आदमी ज्यादा संयम बताते हैं। इसप्रकारका गुस्सा जिसके प्रति प्रेम और मित्रभाव हो, उसपर भी होता है। बल्कि उसी पर ज्यादा जल्दी होता है; पराये आदमी पर कम होता है। यह स्वभाव, शिक्षा, संस्कार वगैरहकी कमीका परिणाम है; लेकिन द्वेषवृत्तिका नहीं ! अहिंसा-धर्ममें प्रगति करने उसके एक आदरपात्र सेवक और अगुआ बननके लिए यह त्रुटि ज़रूर दूर होनी चाहिये। ऐसा नहीं कि ऐसी त्रुटि होनेके कारण कोई आदमी अहिंसाधर्मका सिपाही भी नहीं हो सकता। अहिंसाके लिए जो वस्तु महत्वकी है वह है अद्वेष या अवैर-वृत्ति। जब किसीने कुछ नुक़सान या अपमान किया हो तब उसका बदला किस तरह लें, उसे नुक़सान किस तरह पहुँचायें, वगैरह विचार जिसके मनमें आते रहते हैं और जो उस बात को भूल ही नहीं सकता; बल्कि बदला लेनेके मौक़े ही ढूँढता है, और उस आदमीका कुछ अनिष्ट हो तब खुश होता है, उसके दिलमें हिंसा, द्वेष या वैरकी वृत्ति है। क्रोध भी आये शोक भी हो, फिर भी, अगर मनमें ऐसे भाव न उठ सकें तो वह अहिंसा है। नुक़सान करने वालेका बुरा न चाहनेकी शुभवृत्ति जिसके दिलमें है वह प्रसंगवशात् क्रोधवश होता हो, तो भी वह अहिंसाधर्मका उम्मीदवार हो सकता है। यह एक दूसरी बात है कि जितनी हदतक वह अपने गुस्सेको रोकना सीखेगा उतना ही वह अहिंसामें ज्यादा शक्ति हासिल करेगा। तात्विक दृष्टिसे कह सकते हैं कि इस 'चिढ़के क्रोध' और 'वैर के क्रोध' में सिर्फ मात्राका ही भेद है। फिर भी यह भेद उतना ही बड़ा और महत्व का है जितना कि नहानेका गरम पानी और उबलते हुए गरम पानीका है।

(३) प्रश्न—बहस या भाषणोंमें प्रतिपक्षीका मज़ाक उड़ाने, वाग्बाण चलाने या तिरस्कारकी भाषा इस्तेमाल करनेमें जो अहिंसा का भंग होता है वह किस हद तक निर्दोष माना जाये ?

उत्तर—मान लीजिए कि हिंसाका सादा अर्थ है घाव करना। जो प्रहार दूसरेको घावके जैसा मालूम होता है, वह हिंसा है; फिर वह हाथ-पैर या शस्त्रसे किया हो, शब्दसे किया हो, याकि दिलसे छिपी हुई बददुआ ही हो। स्थूल घाव जब सीधी छुरीका होता है तो कम ईज़ा देता है। टेढ़ी बरछीका हो तो बदनका ज़्यादा ज़्यादा हिस्सा चीर डालता है। तकलीकी तरह नुकीला शस्त्र हो तो उसका घाव और भी ज़्यादा खतरनाक होता है। उसी तरह शब्दोंका घाव सीधा हो तो जितनी ईजा देता है, उससे बाह्य दृष्टिसे विनोदात्मक

लेकिन तिरस्कार और वक्रतायुक्त शब्द ज़्यादा चोट पहुँचाता है। जो प्रतिपक्षीके नाज़ुक भागको जख्म पहुँचाता है, वह घाव ही है। और यह तो हम जान सकते हैं कि हमारा शब्द किसी आदमीको महज़ विनोद मालूम होगा या प्रहार। इसलिए अहिंसामें ऐसे प्रहार करना अयोग्य है।

(४) प्रश्न—अहिंसामें अपनी व्यक्तिगत अथवा संस्थाकी रक्षा, अथवा न्यायके लिए पुलिस या कचहरीकी मदद ली जा सकती है या नहीं? चोर, डाकू या गुंडोंके हमलेका सामना बलसे कर सकते हैं या नहीं अहिंसावादी स्त्री अपनी इज्ज़त पर आक्रमण करने वाले पर प्रहार कर सकती है या नहीं?

उत्तर—यहां पर सामान्य जनता और प्रयत्नपूर्वक अहिंसा की उपासना करने वालेमें कुछ भेद करना चाहिए। जो अपेक्षा एक विचारक अहिंसक कार्यकर्त्ता से रखी जाती है वह सामान्य जनतासे नहीं रखी जाती मतलब, सामान्य जनताके लिए अहिंसाकी मर्यादा कुछ मोटी होनी अनिवार्य है। इसलिए अगर हम इतना ही विचार करें कि सामान्य जनताके लिए अहिंसा धर्मका कब और कितना पालन ज़रूरी समझना चाहिए तो काफी होगा। समझदार व्यक्ति अपनी २ शक्ति के मुताबिक इससे आगे बढ़ सकते है।

इस दृष्टिसे, अहिंसाके विकासके मानी हैं जंगलके क़ानूनमें से सभ्यता अथवा क़ानूनी व्यवस्थाकी ओर प्रयाण। अगर हरेक आदमी अपने भयदाता या अन्याय कर्त्ताके सामने हमेशा बन्दूक उठाकर या अपने आदमियोंको इकट्ठा करके ही खड़ा होता रहे तो वह जंगलका क़ायदा कहा जायगा। इसलिए जहाँ पुलिस या कचहरीका आश्रय लेनेके लिए भरपूर समय या अनुकूलता हो, वहाँ जो शख्स अहिंसाकी उच्च मर्यादाका पालन नहीं कर सकता, वह उनका आश्रय ले तो समाजके लिए आवश्यक अहिंसाकी मर्यादाका पालन हुआ माना जायगा। जहाँ वैसा आश्रय लेनेकी गुंजाइश न हो (जैसे कि, जब चोर या हमला करनेवाला प्रत्यक्ष सामने आया हो) वहाँ वह अपनी आत्म-रक्षाके लिए और गुनहगारको पुलिसके हवाले करनेकी गर्ज़से उसे अपने वशमें लानेके लिए, जितना आवश्यक हो उतने ही बलका उपयोग करे तो उसमें होने वाली हिंसा क्षम्य मानी जायगी। मगर, बात यह है कि आम तौर पर लोग उतने ही बलका प्रयोग करके रुकते नहीं। कब्जेमें आये हुए गुनहगारको बुरी बुरी गालियाँ देते और इतनी बुरी तरह पीटते हैं कि बाज दफा वह अधमरा हो जाता है। यह हिंसा अक्षम्य है; यह हैवानियत है। समाजको ऐसे बर्तावसे परहेज़ रखनेकी तालीम देना ज़रूरी है। अहिंसा पसन्द समाजके लिए यह समझ लेना ज़रूरी है कि हरेक गुनहगारको एक प्रकारका रोगी ही मानना चाहिए। जिस तरह तलवार लेकर दौड़ते हुए किसी पागलको या सन्निपातमें उद्दंडता करने वाले किसी रोगीको जबरदस्ती करके भी वशमें लाना पड़ता है, उसी तरह चोर, लुटेरे या अत्याचारीको पकड़ तो लेना होगा, लेकिन पागल या सन्निपात वाले मरीजको वशमें करनेके बाद हम उसे पीटते नहीं रहते। उलटे, उसको रहमकी दृष्टिसे देखते हैं। यही दृष्टि दूसरे गुनहगारोंके प्रति भी होनी चाहिए। उसे हम पुलिसको सौंपते हैं इसकी मानी ये हैं कि वैसे रोगियोंका इलाज करनेवाली संस्थाके हाथ हम उसे दे देते हैं।

(हरिजन-सेवकसे)

ऊँच-नीच-गोत्र विषयक चर्चा

[लेखक—श्री० बालमुकुन्द पाटोदी जैन 'जिज्ञासु']

[इस लेखके लेखक पं० बालमुकुन्दजी किशनगंज रियासत कोटाके निवासी हैं। यद्यपि आप कोई प्रसिद्ध लेखक नहीं हैं परन्तु आपके इस लेख तथा इसके साथ भेजे हुए पत्र परसे यह साफ़ मालूम होता है कि आप बड़ी ही विनम्र प्रकृतिके लेखक तथा विचारक हैं, और अच्छे अध्ययनशील तथा लिखनेमें चतुर जान पड़ते हैं। अपने उपनामके अनुसार आप सचमुच ही जिज्ञासु हैं. इसीलिये आपने अपने पत्रमें लिखा है—"आपका अनेकान्तपत्र बहुत ऊँची श्रेणीका है और बड़े-बड़े उच्चकोटिके विद्वानोंसे सेवित है। यदि मुझ बालक (ज्ञानहीन) का यह चर्चारूप प्रश्नात्मक लेख अनेकान्तपत्रमें छापना उचित हो तो कृपया छाप दीजियेगा और नहीं तो यदि आपको अपने परोपकारस्वरूप शुभ कार्योंसे अवकाश मिले तो कृपया किसी प्रकार उत्तर लिखकर मेरा समाधान करके मेरी ज्ञानवृद्धि में सहायक तो होना चाहिये।" साथ ही, यह भी प्रकट किया है कि "मैंने आजतक किसी भी जैनपत्रमें इच्छा रहने पर भी कई कारणोंके वशवर्ती होकर कुछ भी लेख नहीं लिखा है।" और इसके बाद अपनी कुछ त्रुटियोंका—जो बहुत कुछ साधारण जान पड़ती हैं—उल्लेख करते हुए लिखा है—"इतना सब कुछ होने पर भी, केवल अपनी ज्ञानवृद्धिके लिये, मेरे हृदयमें लिखनेकी इच्छा अब कुछ विशेष हुई है। इसलिये प्रश्नात्मक चर्चारूप यह लेख जिज्ञासु भावनासे प्रेरित होकर लिखा जाता है।" और इससे आपका लेख लिखनेका यह पहला ही प्रयास जान पड़ता है, जिसमें आप बहुत कुछ सफल हुए इस तरहके न मालूम कितने अच्छे लेखक अपनी शक्तिको छिपाए और अपनी इच्छाको दबाए पड़े हुए हैं—उन्हें अपनी इच्छाको कार्यमें परिणत करने और अपनी शक्तिको विकसित करनेका अवसर ही नहीं मिल रहा है, यह निःसन्देह खेदका विषय है। मैं चाहता हूँ ऐसे लेखक संकोच छोड़कर आगे आएँ और लेखनकलामें प्रगति करके विचार क्षेत्रको उन्नत बनाएँ। अनेकान्त ऐसे लेखकोंका हृदयसे अभिनन्दन करने और उन्हें अपनी शक्तिभर यथेष्ट सहयोग प्रदान करनेके लिये उद्यत है।

लेखक महोदयकी जिज्ञासा-तृप्तिके लिये मैंने लेखमें कहीं-कहीं कुछ समाधानात्मक फुट नोट्स लगा दिये हैं, उनसे पाठकोंको भी विषयको ठीक रूपसे समझनेमें आसानी होगी। विशेष समाधान श्रद्धेय बाबू सूरजभानजी करेंगे, ऐसी आशा है, जिनके लेखको लक्ष्य करके ही यह प्रश्नात्मक लेख लिखा गया है और जिनसे समाधान मांगा गया है।

—सम्पादक]

अनेकान्तकी द्वितीय वर्षकी प्रथम किरणमें एक लेख 'गोत्रकर्माश्रित-ऊँच-नीचता' शीर्षक प्रकाशित हुआ है, जो कि वयोवृद्ध पूज्य बाबू सूरजभानजी साहब वकीलका लिखा हुआ है। लेख वास्तवमें पदार्थके अंतस्तलमें प्रविष्ट होकर लिखा गया है, उसकी गंभीरता, गहरी छानबीन. उसका ज्ञानाधिक्य, अनुभव पूर्णता आदि गुण देखते ही बनते हैं। मुझ जैसे बेपढ़े मनुष्य की शक्ति नहीं कि उसकी विशेषताओंका वर्णन कर सके।

लेखमें गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी १३वीं गाथा देकर ऊँच और नीच गोत्रके स्वरूपका वर्णन किया है अर्थात् बतलाया है कि कुलकी परिपाटीके क्रमसे चले आये

जीवके ऊँचे आचरणको 'ऊँच गोत्र' और नीचे आचरणको 'नीच गोत्र' कहते हैं । ऊँचगोत्र-सूचक ऊँचे आचरणको सम्यक् चारित्र, धर्माचरण आदि न मानकर व्यवहार योग्य कुलाचरण, नागरिकका आचरण या सभ्य मनुष्यका आचरण आदि माना है। और नीचगोत्र-सूचक नीचे आचरणको मिथ्याचारित्र, अधर्माचरण आदि न मानकर खोटा लौकिक आचरण, लोकव्यवहारके अयोग्य ठग डकेतोंका निंद्य आचरण या असभ्य मनुष्योंका आचरण आदि माना है। और ऐसा मानकर सम्यक् चारित्र, धर्माचरण और व्यवहार-योग्य कुलाचारण या सभ्य मनुष्यके आचरणमें तथा मिथ्याचारित्र, अधर्माचरण और ठग-डकेतोंके निंद्या चरण या असभ्य मनुष्यके आचरणमें भेद व्यक्त किया है। और इस तरह पर ऊँचे आचरणका अर्थ व्यवहार-योग्य कुलाचरण और नीचे आचरणका अर्थ ठग-डकेतोंका निंद्य कुलाचरण लगाया है। अर्थात् उपर्युक्त अभिप्राय निकाला है।

परन्तु यदि देखा जावे तो संसारमें दो ही प्रकारके आचरण दृष्टिगोचर होते हैं—एक संयमाचरण और दूसरा असंयमाचरण। लोकव्यवहार–योग्य सभ्य कुलके मनुष्यके आचरणको संयमाचरण अर्थात् ऊँचा आचरण कहते हैं और लोकव्यवहारके अयोग्य असभ्यकुलके ठग-डकेतोंके निंद्य आचरणको असंयमाचरण अर्थात् नीचा आचरण कहते हैं। जैसे माता पितादि गुरुजनोंकी सेवा करना, रोगियोंको औषधि आदि देना, असमर्थदीनोंकी कई प्रकारसे सहायता करना, किसीकी धरोहर उसे वैसीकी वैसी वापस देना, ऋण लेकर पूरा चुकाना, ठीक पूरे तौलसे देना तथा वैसे ही पूरा लेना, झूठ नहीं बोलना, झूठी साक्षी नहीं देना, किसीको वचन देकर निभाना, दूसरेकी स्त्रीको माता बहिन या बेटी समझना, अपनी स्त्रीसे संतुष्ट रहना, वेश्यागमन-परस्त्री गमन न करना, अति लोभ न करना, दूसरेका हक़ (स्वत्व) न दबा बैठना, ऋणीकी शक्तिसे अधिक ब्याज न लेना, अति तृष्णा न करना, अपनेसे न सँभल सके ऐसे व्यापारादिको न बढ़ाना आदि सहस्रों प्रकारके ऊँच गोत्र सूचक व्यवहारयोग्य सभ्य कुलके ऊँचे आचरण हैं। और गर्वोन्मत्त होकर निरपराधोंको मार डालना–काट डालना उन्हें सताना, अनेक प्रकारके कष्ट देना उनका चित्त दुखाना, गुरुजनोंका अपमान तिरस्कार करना, दूसरेकी धरोहर हड़प जाना, ऋण लेकर नहीं देना, अधिक तौलकर लेना तथा कम तौल कर देना, चोरी करना, डाका डालना, किसीका धन ठग लेना, झूठ बोलना, झूठी साक्षी देना, दूसरेसे विश्वासघात करना, वचन देकर नट जाना, ऐसी बात कहना जिससे दूसरा संकटमें पड़ जाय, पुत्र-भाई-नातेदार पड़ोसी-मित्र आदिकी स्त्रियोंसे बलात्कार व्यभिचार करना, परस्त्री-विधवा-दासी-वेश्यादिको घरमें डाल लेना या उनसे छिपकर अथवा प्रकट रूपमें व्यभिचार करना, अति तृष्णा व अति लोभ करना, दूसरेके धनको–रहनेके स्थानको हड़प जाना, अधिक ब्याज लेना, अपनेसे न सँभल सके इतने व्यापार यन्त्रालयादिको बढ़ाते जाना आदि सहस्रों प्रकारके नीच गोत्र सूचक व्यवहारके अयोग्य असभ्य ठग डकेतोंके निंद्य कुलके नीचे आचरण हैं। व्यवहारयोग्य सभ्य कुलके मनुष्योंमें कम त्याग व कम संयम होता है और व्रती श्रावक व मुनियोंमें अधिक त्याग व अधिक संयम वा पूर्ण संयम होता है, और इसी तरह पर ठग-डकेतोंके असभ्य कुलवालोंमें अधिक असंयम व पूर्ण असंयम होता है। और इस तरह पर व्यवहार योग्य सभ्य कुलाचरण व धर्माचरण एक ही बात है तथा असभ्य कुलाचरण व असंयमा-

चरण भी एक ही बात है ।

अब मैं यहाँ प्रश्न करता हूँ कि ऊँच गोत्र सूचक ऊँचे आचरणका अर्थ व्यवहारयोग्य सभ्य कुलाचरण व संयम धर्माचरण दोनों ही प्रकारका आचरण किया जावे तथा नीच गोत्र-सूचक नीचे आचरणका अर्थ ठग-डकैतोंके असभ्य कुलका आचरण व असंयमाचरण दोनों ही प्रकारका आचरण किया जावे और व्यवहार-योग्य सभ्य कुलाचरण तथा धर्माचरणमें और ठग-डकैतीके असभ्य कुलाचरणमें और असंयमाचरणमें भेद व्यक्त न किया जावे तो क्या हानि है?

आगे चलकर श्रीपूज्यपादस्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिमें वर्णित ऊँचगोत्र और नीचगोत्रका स्वरूप यह बतलाया है कि 'लोक पूजित कुलोंमें जन्म होनेको ऊँच गोत्र व गर्हित कुलोंमें जन्म होनेको नीचगोत्र कहते हैं।'

यहाँ पर लोकपूजित कुल व गर्हित कुलका स्वरूप विचारना चाहिये। जो कुल अपने हिंसा झूठ-चोरी आदि पापोंके त्यागरूप अहिंसा सत्य-शील-संयम दान आदि धर्माचरणोंके धारणरूप आचरणोंके कारण पूज्य हैं—सन्मानित हैं—प्रतिष्ठा प्राप्त हैं वे ही कुल लोक-पूजित कुल माने जाने चाहियें—राज्य-धन सैन्य-बल आदिके कारण पूजित कुल लोक पूजित नहीं माने जाने चाहियें। जो कुल हिंसा झूठ-चोरी आदि पापाचरणोंके कारण गर्हित हैं वे गर्हित कुल माने जाने चाहियें। और इस तरह पर धर्माचरणोंके कारण लोकोंद्वारा पूजित कुलमें जन्म लेनेवालेको 'ऊँचगोत्री' व पापाचरणोंसे गर्हित कुलमें जन्म लेनेवालेको नीच-गोत्री मानना चाहिये, और ऐसा माननेसे गोम्मटसारकी १३ वीं गाथामें वर्णित ऊँच-नीच-गोत्रके स्वरूपमें और श्रीपूज्यपादस्वामीरचित सर्वार्थसिद्धिमें वर्णित ऊँच-नीच-गोत्रके स्वरूपमें कोई विरोध प्रतिभासित नहीं होगा। क्या मेरा यह कहना ठीक है? अथवा उक्त प्रकारसे मानने पर जैनसिद्धान्तसे क्या कोई विरोध नहीं आएगा।

आगे लिखा है कि सब ही देव (कल्पवासी आदि धर्मात्मा व भवनवासी आदि पापाचारी देव) और भोग भूमियाँ जीव—चाहे वे सम्यक्दृष्टि हों या मिथ्या-दृष्टि—जो अणु मात्र भी चारित्र ग्रहण नहीं कर सकते वे तो उच्च गोत्री हैं और देशचारित्र धारण कर सकने वाले पंचम गुणस्थानी संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच नीच गोत्री ही हैं।'

श्री वीर भगवान्ने अपने शासनमें विरोध रूप शत्रुको नष्ट करनेके लिये अनेकान्त अपना अपेक्षावाद वा स्याद्वाद जैसे गंभीर सिद्धान्त-अमोघास्त्रका निर्माण किया है, फिर जहाँ हमें कुछ विरोध प्रतिभासित हो वहाँ हम अनेकान्तसे विरोधका क्यों न समन्वय कर लें क्यों न अपेक्षावादका उपयोग करें? और वह समन्वय इस प्रकारसे कर लिया जावे तो क्या कोई जैन-सिद्धान्तसे विरोध आवेगा?—

कल्पवासी देवों और भवनत्रिक देवोंमें जो उच्च-गोत्रका उदय बतलाया है वह उनके शक्तिशालीपनेकी अपेक्षा व विशिष्ट पुण्योदयकी अपेक्षासे है और वह भी केवल मनुष्योंके माननेके लिये है अर्थात् मनुष्य ऐसा मानें कि देव हमसे ऊँचे हैं, ऐसा मानना चाहिये। और इसी प्रकार तिर्यंचोंमें जो नीच गोत्रका उदय बतलाया है वह उनके पशुपने व विशिष्ट पापोदयकी अपेक्षासे है, और वह भी केवल मनुष्योंके माननेकी अपेक्षासे है अर्थात् मनुष्य ऐसा मानें कि तिर्यंच हमसे नीचे हैं, ऐसा मानना चाहिये। इसी तरह नारकियोंमें भी जो नीच गोत्रका उदय बतलाया है वह भी उनके

अत्यन्त पापोदयकी अपेक्षासे है और केवल मनुष्योंके माननेकी वस्तु है, मनुष्य यह अनुभव करें कि नारकी हमसे नीचे हैं ऐसा मानना चाहिये।

देवोंको ऊँच गोत्र वाले मानना और तिर्यंचों व नारकियोंको नीच गोत्र वाले मानना मनुष्योंके मानने की वस्तु इसलिये है कि देवोंको अपनेसे ऊँचे व अपनेको देवोंसे नीचे तथा तिर्यंचों, नारकियोंको अपनेसे नीचे व अपनेको तिर्यंच नारकियोंसे ऊँचे माननेसे जो तज्जन्य रसानुभव होता है वह मनुष्योंको ही होता है; क्योंकि मनुष्य ही ऐसा मानते हैं। और इसलिये भी उपर्युक्त प्रकारका मानना मनुष्योंके माननेकी वस्तु है। मनुष्यों द्वारा जो देव ऊँचे व तिर्यंच नारकी नीचे माने जाते हैं उसका रसानुभव देव तिर्यंच नारकियोंको कुछ भी नहीं होता।

सर्व प्रकारके देव व भोग भूमियाँ जाव अणुमात्र भी चारित्र धारण नहीं कर सकते, इसका भाव यह मानना चाहिये कि वे संप्राप्त भोगोंका त्याग करके और जो कुछ भी चारित्र धर्माचरण पालनेके अभ्यासी हैं उससे बढ़ नहीं सकते, अणुमात्र चारित्र धारण नहीं कर सकनेसे यह प्रयोजन न समझना चाहिये कि उनमें चारित्रका, धर्माचरणोंका अभाव हो है। भोगभूमियां जीव अत्यन्त मंद कषाय होते हैं और इसलिये देव ही उत्पन्न होते हैं तथा वे सम्यक्त भी ग्रहण करते हैं, धर्म चर्चादि भी करते हैं और इसी तरह सर्वार्थसिद्धि आदि अनुत्तर विमानोंके देव एक भवावतारी व दो भवावतारी होते हैं तथा सदैव धर्म चर्चा व पूजा प्रभावनादि धर्माचरण किया करते हैं तथा पंचम स्वर्गके देव ब्रह्मचारी देव ऋषि होते हैं। सौधर्मादि स्वर्गोंके देव भी भगवान्के कल्याणकादिमें व समवसरणादिमें आते हैं तथा पूजा प्रभावनाधर्म चर्चादि किया करते हैं। इसी तरह भवनत्रिक देव भी यथाशक्ति धर्म-साधन करते हैं तथा सम्यक्त भी ग्रहण कर लेते हैं। यह सब उनके धर्माचरण ही हैं और इसलिये उनमें उच्च गोत्र भी होना ही चाहिये।

जैनशास्त्रोंमें पद पद पर यह कथन मिलता है कि शास्त्रोंमें जो भी बातें कहीं हैं जो भी विवेचन किया गया है, वह निरपेक्ष न कहा जाकर किसी न किसी अपेक्षासे ही कहा हुआ होता है, भले ही वहाँ उस अपेक्षाका स्पष्टीकरण या प्रकटीकरण न किया गया हो। जहाँ जो बात कही गई हो उसे निरपेक्ष न समझ कर जिस अपेक्षासे कही गई हो उसी अपेक्षासे समझने पर ठीक समझी गई ऐसा कहा जा सकता है, बल्कि निरपेक्ष कही हुई व समझी हुई बात मिथ्या तक कह दी जाती है। जब यह बात है तब मेरी कही हुई यह बात कि विशिष्ट पुण्योदयकी अपेक्षा सारे देवोंमें उच्च गोत्रका उदय व विशिष्ट पापोदयकी अपेक्षा तिर्यंच व नारकियोंमें नीचगोत्रका उदय माना है, क्यों नहीं ठीक मानी जानी चाहिये? और यदि मेरी उपर्युक्त बात ठीक है तो गोम्मटसार कर्मकाण्डकी १३वीं गाथामें ऊँचे व नीचे आचरणके आधार पर वर्णित ऊँच नीचगोत्रके स्वरूपकी संगति सारे संसारके प्राणियों पर ठीक बैठ जाती है, और यहाँ ११वीं गाथासे प्रकरण भी सारे संसारके प्राणियोंका आरहा है, इसलिये भी १३वीं गाथामें वर्णित ऊँच-नीच गोत्रका स्वरूप देव मनुष्य तिर्यंच व नारकी रूप सारे संसारके जीवोंके लिये ही वर्णित है। और वह इस तरह पर घटित होता है—

कल्पवासी, भवनवासी, व्यंतर व ज्योतिषी देवोंके धर्माचरणोंके विषयमें तो पहले लिखा ही जा चुका है कि धर्माचरण उनमें पाये जाते हैं और पापाचरणों तथा उनमें ऊँचे नीचे और छोटे-बड़े भेद-प्रभेदोंके विषयमें पूज्य वकील बाबू सूरजभानजी साहबने अपने लेखमें

भले प्रकार वर्णन कर ही दिया है कि पापाचरण भी उनमें पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह आचरण मेरा ऊँचा है और यह आचरण मेरा जघन्य है (जैसे स्वर्गके किन्हीं देवोंने आठवें नारायण लक्ष्मणजीसे कहा कि तुम्हारे भ्राता रामचन्द्रजी मर गये हैं, यह सुनकर लक्ष्मणजी तत्काल मरणको प्राप्त हो गये) तथा अमुक-देव मुझसे नीचा है तथा इन्द्रादिक देवोंसे मैं नीचा हूँ और अमुक देवोंसे मैं ऊँचा हूँ तथा अमुकदेव मुझसे ऊँचे हैं इस प्रकारके विचार उनके होते हैं और तज्जन्य ऊँचता-नीचताका रसानुभव भी होता है, इसलिये धर्माचरणों व पापाचरणोंकी अपेक्षा देवोंमें भी ऊँच गोत्र व नीचगोत्रका उदय क्यों न मानना चाहिये?

तिर्यंचोंमें भी वनस्पतियों और पशुओंकी ऊँचता तथा व्रताचरणका कथन तो पूज्य बाबू साहबने अपने लेखमें स्पष्ट कर ही दिया है, नीची जातिके बंबूल थूहर आदि काँटेदार व निंब आक आदि कड़ए पेड़ और सूअर, स्याल, सांप, बिच्छू आदि पशु सहस्रों प्रकारके पाये जाते हैं और पक्षी भी हंस, सारस, तोता, मैना आदि ऊँची जातिके व काक गृद्ध आदि नीची जातिके सहस्रों प्रकारके हैं। वनस्पतियोंके धर्माचरण-पापाचरण तो भगवान् केवली गम्य हैं परन्तु ये भी जीव हैं, अतः इनमें भी दोनों प्रकारके भाव होंगे अवश्य। जब इनमें रति आदि २३ कषायें बतलाई हैं तब इनमें दोनों आचरण हैं, रति कषायका कार्य प्रेम करना है और यही इनका सदाचरण हैं शेष कषायोंका कार्य असदाचरण है इनको अपने सदाचरण असदाचरण जन्य ऊँच नीचताका रसानुभव भी होता है। पशु पक्षियोंके धर्माचरण विषयमें जिनागममें स्पष्ट वर्णन है ही कि ये लोग पंचम गुणस्थानी होकर देश चारित्र धारण करके श्रावक तक हो सकते हैं। पापाचरण भी इन पशु पक्षियोंके सबको विदित ही हैं। उनके उदाहरण लिखनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। अपनी ऊँचता-नीचताका व धर्माचरण-पापाचरणके रसका इन पशु पक्षियोंको भी अनुभव होता है इसलिये उच्चाचरण नीचाचरणके आधार पर इन सम्पूर्ण तिर्यंचोंमें भी ऊँच गोत्रका उदय व नीच गोत्रका उदय क्यों न मानना चाहिये।

इसी प्रकार नारकियोंकी नीचता व उनके दुष्टाचरण तो सब पर विदित ही हैं; परन्तु उनमें ऊँचता व सदाचरण भी पाये जाते हैं। सातवें नरकके नारकियोंसे ऊपरके नारकी पहले नरक तक उत्तरोत्तर ऊँचे तथा कम पाप भोगी और कम आयु वाले हैं जैसा कि पूज्य बाबू साहबने भी लिखा है तथा उनमें सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और मुनि केवली यहाँ तक कि तीर्थंकर तक होने वाले शुभ आत्मा भी उनमें पाये जाते हैं। उन्हें अपनी ऊँच नीचता व दुराचरण-धर्माचरणका रसानुभव भी बहुत ही अधिक होता है, इसलिये उच्चाचरण नीचाचरणके आधार पर नारकियोंमें उच्चगोत्र तथा नीचगोत्र क्यों न मानना चाहिये?

अब रहे मनुष्य, जिनकी ऊँच नीचताका वर्णन बाबू साहबने लेखमें अच्छा किया है, बल्कि नीचताका वर्णन तो बहुतही विशेष रूपसे लिखा गया है, फिर भी उनको, नीचगोत्री भी मनुष्य होते हैं ऐसा बतला कर केवल उच्चगोत्री ही बतलाया है। मनुष्य अपने उच्चाचरणोंसे मोक्ष तक प्राप्त कर लेता है अतः उच्च गोत्री तो है ही, परन्तु अपने दुराचारोंसे सातवां नरक भी प्राप्त कर लेता है इसलिये उसे नीच गोत्री भी होना चाहिये। गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी गाथा २९८ से ३०१ तक मनुष्योंमें नीचगोत्रका उदय बतलाया भी है। वे गाथाएँ निम्न लिखित हैं:—

मणुवे ओघो थावरतिरियादावदुगएयवियलिंदी ।
साहरणिदराउतियं वेगुव्वियछक्कपरिहीणो ॥२९८॥

अर्थात् सब मनुष्योंमें उदययोग्य १२२ प्रकृतियोंमें स्थावर, तिर्यंच गति, आतप आदि २० प्रकृतियाँ कम करनेसे १०२ का उदय है। इनमें नीचगोत्र कम नहीं किया, अतः मनुष्योंमें नीचगोत्रका उदय है।

मिच्छमपुण्णं छेदो अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे
विदियकसायणराणु दुब्भगऽणादेज्जअज्जसय ॥२९९

अर्थात—उन मनुष्योंमें मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानियोंके मिथ्यात्व, अपर्याप्त, अनंतानुबंधीकी ४ चौकड़ी आदि प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति होती है। तीसरे गुणस्थान तक नीचगोत्रकी उदय व्युच्छित्ति नहीं हुई, अतः उसका उदय है।

देसे तदियकसाया णीचं एमेव मणुससामण्णे ।
पज्जत्ते वि य इत्थी वेदाऽपज्जत्तिपरिहीणो ॥३००॥

अर्थात्—पाँचवें गुणस्थानमें प्रत्याख्यानी चौकड़ी व नीचगोत्रकी उदय व्युच्छित्ति होती है और पर्याप्त मनुष्योंमें पहली १०२ में स्त्री वेद व अपर्याप्ति कम करनेसे १०० का उदय है। इस प्रकार पंचम गुणस्थानमें नीच गोत्रकी व्युच्छित्ति हुई है, अतः यहां तक पर्याप्त मनुष्यके नीचगोत्रका उदय पाया जाता है।

मणुसिणिएत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१

अर्थात्—१०० प्रकृतियोंमें स्त्रीवेद मिलाकर उदययोग्य प्रकृतियोंमेंसे तीर्थंकर, आहारक युगल, पुरुष वेद, नपुंसक वेद ये पांच प्रकृतियां कम करनेसे ९६ का उदय मनुष्यणीके हैं। यहां भी नीचगोत्र कम नहीं हुआ, अतः पर्याप्त स्त्रीके नीचगोत्रका उदय वर्तमान है।

इस तरह पर जब मनुष्योंमें नीचगोत्रका उदय सिद्धान्तमें बतलाया गया है, तब पूज्य बाबू साहबने अपने लेखमें उसे किस प्रकार अस्वीकार किया, यह बात समझानी चाहिये अथवा मनुष्योंमें नीचगोत्रका उदय स्वीकार करना चाहिये। अनुभवमें तो नीच व उच्च दोनों गोत्रोंके भाव एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्री देव मनुष्य नारकी व तिर्यंच तक सब जीवोंके अपने प्रत्येक सदाचरण व दुराचरणके साथ साथ प्रति समय आते रहते हैं और गोम्मटसारकी १३ वीं गाथाके अनुसार सारे संसारके जीवोंपर नीच व ऊँच दोनों गोत्र जीवोंके सदाचरण व दुराचरणके आधार पर घटित भी होते हैं। तथा नीचगोत्रसे ऊंचगोत्रका और ऊँचगोत्रसे नीचगोत्रका अपने सदाचरणोंसे व दुराचरणोंसे संक्रमण भी होजाता है, ऐसा मैंने कभी जैनमित्रमें पढ़ा है। इसलिये मान, प्रतिष्ठा, राज्य, लक्ष्मी आदिके कारण किसी दुराचारीको जन्म भरके लिये उच्चगोत्री और दरिद्रता, नीची आजीविका आदिके कारण किसी सदाचारी धर्मात्माको जन्म भरके लिये नीचगोत्री मान बैठना सरासर अन्याय व पाप बंधका कारण जान पड़ता है।

आगे पूज्य बाबू साहबने सभी मनुष्योंको उच्च गोत्री बतलाते हुए लिखा है कि:-गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा १८ में साफतौरसे बतलाया है कि नीच ऊँच गोत्र भवोंके अर्थात् गतियोंके आश्रित है और जिससे यह ध्वनित किया है कि नरक-भव तिर्यंच भवके सब जीव नीचगोत्री और देवभव व मनुष्यभव वाले सब उच्चगोत्री हैं। उस गाथाका वह अंश इस प्रकार है:—

भव मस्सिय णीचुच्चं इदि गोदं ॥

इस गाथा वाक्यका तो 'नीच-ऊँचगोत्र गतियोंके आश्रित है' यह अर्थ नहीं लिखा है बल्कि यह अर्थ लिखा है कि 'नीचता व ऊँचता भवके आश्रित है'। "इदि गोद" ये शब्द गाथाके तीसरे चरणके न होकर चौथे चरणके हैं, अतः "भवमस्सिय णीचुच्चं" इस पदके भावसे

इदि गोदं" का भाव पृथक् है । "भवमस्सिय णीचुच्चं" पदसे नरक तिर्यंचभवके सब जीव नीच व देव मनुष्य सब ऊंचगोत्री हैं यह भाव ध्वनित नहीं होता, बल्कि यह ध्वनित होता है कि नीचता व उच्चता प्रत्येक भवके आश्रित है अर्थात् सारे संसारके जो चार प्रकारके देव, मनुष्य नारकी, तिर्यंच जीव हैं उनके प्रत्येक भवमें नीचता व ऊँचता होती है, अतः उन सभीके नीच व ऊँच दोनों गोत्रोंका उदय है । प्रत्येक भवमें नीचता व ऊंचता होनेसे यह प्रयोजन है कि प्रत्येक जीव अपने दुराचरण व सदाचरणसे नीच व ऊँच कहलाता है ।

आगे लिखा है कि गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी गाथा २८५ में मनुष्यगति और देवगतिमें उच्च गोत्रका उदय बतलाया है, यह तो ठीक है परन्तु "उच्चुदओ णरदेवे" इस पदसे मनुष्योंमें नीच गोत्रका उदय सर्वथा है ही नहीं ऐसा प्रमाणित नहीं होता ।

आगे लिखा है कि म्लेच्छखण्डके सभी म्लेच्छ सकलसंयम ग्रहण कर सकते हैं इसलिये वे उच्चगोत्री हैं, परन्तु म्लेच्छ लोग जब आर्यखण्डमें आकर आर्योंका आचार पालन करेंगे व सकलसंयम ग्रहण कर लेंगे तब वे उच्च गोत्री हो जावेंगे, ※ इससे पहले वे म्लेच्छखण्डमें रहें व आर्यखण्डमें आकर रहें, बिना आर्योंका आचार पालन किये उच्च गोत्री न होकर नीच गोत्री ही हैं । श्री जयधवल और श्री लब्धिसारका जो प्रमाण दिया है उससे इतना ही सिद्ध है कि म्लेच्छ लोग सकल संयमको योग्यता रखते हैं, वे सकल संयमके पात्र हैं, उनके संयम प्राप्तिका विरोध नहीं है, उनमें संयमोपलब्धिकी संभावना है । उस प्रमाणसे यह सिद्ध नहीं है कि बिना आर्योंका आचार पालन किये या बिना सकल संयमी हुए भी वे आर्य और उच्च गोत्री हैं, बल्कि उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि वे मातृपक्षकी अपेक्षा म्लेच्छ अर्थात् नीच गोत्री ही हैं । हाँ, वे आर्योंका आचार पालन करनेसे या पालन करते रहनेसे नीच गोत्री (म्लेच्छ) से उच्च गोत्री हो सकते हैं ।

आगे लिखा है कि 'कुभोगभूमियां (मनुष्य) पशु ही है इन्हें किसी कारणसे मनुष्य गिन लिया है, परन्तु इनकी आकृति-प्रवृत्ति, और लोकपूजित कुलोंमें जन्म न होनेसे इन्हें नीच गोत्री ही समझना चाहिये ।' परन्तु सारा शरीर मनुष्यका और मुख केवल पशुका होनेसे ही वे सर्वथा पशु नहीं कहला सकते, उन्हें शास्त्रमें मुखाकृति भिन्न होनेसे ही कुमानुष और म्लेच्छ कहा है, वे मंदकषाय होते हैं मर कर देव ही होते हैं, मंदकषाय होनेसे सदाचरणीही कहे जायेंगे और सदाचरणी होनेसे उच्च गोत्रीही कह लावेंगे और हैं । उनकी प्रवृत्ति मंदकषाय रूप होनेसे उच्च ही है । लोक पूजित कुल और अपूजित कुल कर्म भूमिमें ही होता है, वहाँ कुभोग भूमि है, वहां सब समान हैं, लोक पूजित व अपूजितका भाव वहां नहीं है । लोकपूजित कुलमें जन्म होनेसे उच्च गोत्री व अपूजित कुलमें जन्म होनेसे नीच गोत्री कर्मभूमिमें ही माना जाता है । कुभोग भूमि या भोगभूमिमें नहीं माना जाता । बल्कि भोग भूमियां उच्चगोत्री ही होते हैं जिनको पूज्य बाबू साहब ने भी अपने लेखमें स्वीकार किया है । वे नीच गोत्री नहीं होते । और गोम्मटसार कर्मकाण्डकी गाथा नं० ३०२ "मणुसोयं वा भोगे दुब्भगचउणी च संढथीणतियं" आदिमें भी भोगभूमियाँ मनुष्योंमें उच्च गोत्रका उदय बतलाया है । उन कुमानुष लोगों में व्यभिचार नहीं, एक दूसरेकी स्त्री व कामकी वस्तुएँ

※ यदि सकल संयम ग्रहण करनेके बाद उच्चगोत्री होंगे तो यह कहना पड़ेगा कि नीच गोत्री मनुष्य भी मुनि हो सकते हैं । —सम्पादक

व भोग सामग्रीके पदार्थ वे हरण नहीं करते । उनमें कोई दुराचार नहीं, मंदकषाय रूप सदाचार है फिर उन्हें नीच गोत्री कैसे समझा जावे ?

आगे लिखा है कि अन्तरद्वीपजोंको म्लेच्छ मनुष्योंमें शामिल करनेसे ही मनुष्योंमें ऊँच नीच गोत्रकी कल्पना हुई है । अन्तरद्वीपजोंको म्लेच्छ मनुष्योंमें शामिल करनेसे ही मनुष्योंमें ऊँच नीचगोत्रकी सृष्टि नहीं हुई, बल्कि ऊँच नीचताके भाव अनादिकालीन हैं और वे मनुष्योंमें ही नहीं प्राणीमात्रमें पाये जाते हैं और उन्हींके कारण अर्थात् जीवोंके सद्व्यवहार (धर्माचरण) व कुत्सित व्यवहार (पापाचरण) के कारणही मनुष्योंमें क्या सारे जीवोंमें ऊँच नीच गोत्रता आई है, वह बलात्कार किसीकी लाई हुई नहीं है। और न अन्तरद्वीपजों म्लेच्छ मनुष्य नीचगोत्री ही हैं बल्कि वे तो कर्म भूमिजभी नहीं है। (क) भोग भूमिज है। शास्त्रोंमें उनके ऊँच गोत्रका उदय बतलाया है❀। उनको म्लेच्छ केवल उनकी पशु-मुखाकृतिकी अपेक्षा कह दिया गया है, आचरणकी अपेक्षा वे उच्च गोत्री व सदाचारी हैं । अन्तरद्वीपजोंको नीच गोत्री व सर्वथा पशु मानना केवल पूज्य बाबू सूरजभानजी साहबही की मान्यता हो सकती है, बहुमत तो जहाँ तक मैं समझता हूँ ऐसी मान्यता वाला नहीं होगा ।

आगे लिखा है कि अफरीकाके पतित मनुष्य अपने असभ्य व कुत्सित व्यवहारोंको छोड़कर सभ्य बनने लग गये हैं । जब पूज्य बाबू साहबने अपने लेखमें अफरीकाके मनुष्योंको पतित अर्थात् नीचगोत्री मान लिया और यह भी मान लिया कि वे अपने कुत्सित व्यवहारों एवं पापाचरणोंको छोड़कर सभ्य बन गये हैं अर्थात् अपने नीचगोत्र जन्य कुत्सित व्यवहारों-दुराचरणों को छोड़कर नीचगोत्रीसे सभ्य एवं उच्चगोत्री बन गये हैं, तब कोई मनुष्य नीचगोत्री नहीं है ऐसा मानने व लिखनेका क्या अर्थ है वह मेरी कुछ समझमें नहीं आया । बड़ी ही कृपा हो यदि वे उसे समुचित रूपसे समझानेका यत्न करें ।

इसके बाद श्रीविद्यानन्दस्वामीके मतका उल्लेख करते हुए पूज्य बाबू साहबने लिखा है कि 'आर्यके उच्चगोत्रका उदय ज़रूर है और म्लेच्छके नीचगोत्रका उदय अवश्य है ।' परन्तु आर्य होनेके लिये उच्चगोत्रके साथ 'आदि' शब्दसे दूसरे कारण भी श्रीविद्यानन्दने ज़रूरी बतलाये हैं. और वे दूसरे कारण हैं अहिंसा सत्य-शील-संयमादि व्रताचरण अर्थात् उनके

❀समस्त अन्तरद्वीपजोंके उच्चगोत्रका उदय कौनसे दि० जैनशास्त्रोंमें बतलाया है उनके नामादिकको यहाँ प्रकट करना चाहिये था । मुझे तो जहाँतक मालूम है किसी भी दिगम्बर शास्त्रमें इस विषयका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है । प्रत्युत इसके श्रीविद्यानन्दाचार्यने अन्तरद्वीपजोंके दो भेद किये है—एक भोगभूमि समप्रणिधि और दूसरा कर्मभूमि समप्रणिधि । भोगभूमि समप्रणिधि अन्तरद्वीपज भोगभूमियोंके समान होनेसे किसी तरह पर उच्चगोत्री हो सकते हैं; परन्तु कर्मभूमि समप्रणिधि अन्तरद्वीज भोगभूमिया नहीं हो सकते—उनकी आयु, शरीरकी ऊँचाई और वृत्ति (प्रवृत्ति अथवा आजीविका) भोग भूमियोंके समान न होकर कर्मभूमियोंके समान होती है; और इसलिये उनके लिये उच्चगोत्रका नियम किसी तरह भी नहीं बन सकता । वे प्रायः नीच गोत्री होते हैं; इसका विवेचन मैंने 'अन्तर द्वीपज मनुष्य' नामके उस लेखमें किया है, जो गत वर्षके 'अनेकान्त' की ६ ठी किरणमें प्रकाशित हुआ है । मालूम होता है लेखक महोदयका ध्यान उस पर नहीं गया है, उसे देखना चाहिये ।

पूर्णरूप वाले धर्माचरण व उनके अनुरूपधारी सदाचरण व सद्व्यवहार। अहिंसा सत्य-शील-संयमादि सद्व्यवहारों के बिना आर्य मनुष्यके उच्चगोत्रका उदय नहीं है बल्कि नीचगोत्रका उदय है। इसी तरहसे म्लेच्छ मनुष्य होनेके लिये नीचगोत्रके उदयके साथ 'आदि' शब्दसे दूसरे कारण भी आवश्यक बतलाये हैं और वे दूसरे कारण हैं, हिंसा-चोरी झूठ व्यभिचार आदि पापाचरण। हिंसा झूठ चोरी कुशील आदि पापाचरणोंके बिना म्लेच्छ मनुष्योंके नीचगोत्रका उदय नहीं है, बल्कि अहिंसा सत्य शील संयमादिके पालनेके कारण उसके उच्चगोत्र का उदय है ❀।

आगे श्री विद्यानन्द स्वामीके इस आर्य म्लेच्छ विषयक स्वरूप कथनको श्रीयुत पूज्य संपादकजी साहब ने सदोष बतलाया है जिसे बादको पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने भी अपने लेखमें (किरण ३ पृ० २०७) सदोष स्वीकार किया है। परन्तु उसमें आया हुआ 'आदि' शब्द क्या उसकी सदोषताको दूर नहीं कर सकेगा। यदि उसमें सदोषता है तो 'उच्चैर्गोत्रोदयादेरार्याः' इसका अर्थ, उच्च गोत्रोदयको आदि देकर अहिंसा सत्य शील संयमादि आचरणवाले आर्य हैं ऐसा करने पर तथा "नीचैर्गोत्रोदयादेश्च म्लेच्छाः", इसका अर्थ नीचगोत्रोदयको आदि लेकर हिंसा झूठ चोरी-कुशीलादि आचरणधारी म्लेच्छ हैं ऐसा करने पर क्या फिर भी उक्त स्वरूप कथनमें सदोषता प्रतीत होगी? मेरी अल्प बुद्धिमें उपर्युक्त विद्यानन्दस्वामीके स्वरूप कथनकी सदोषता समझमें नहीं आई †।

आगे श्री अमृतचन्द्राचार्यका तत्वार्थसारका श्लोक लिखकर उसका अर्थ लिखा है कि "जो मनुष्य आर्य-खंडमें पैदा होवें सब आर्य हैं जो म्लेच्छ खंडोंमें उत्पन्न

❀ आर्य और म्लेच्छके लक्षणोंमें पड़े हुए 'आदि' शब्दका जो वाच्य अहिंसा-सत्य-शील-संयमादि तथा हिंसा-झूठ-व्यभिचारादिक लेखक महाशयने प्रकट किया है उसका उल्लेख विद्यानन्दस्वामीने कहाँ किया? श्लोकवार्तिकमें तो वह कहीं उपलब्ध होता नहीं। और न यही कहीं उपलब्ध होता है कि अहिंसादिक व्यवहारोंके बिना उच्चगोत्रका और हिंसादिक व्यवहारोंके बिना नीच गोत्रका उदय नहीं बन सकता। लक्षणोंमें 'आदि' शब्दके द्वारा जिन दूसरे प्रायः अप्रधान कारणोंका समावेश किया गया है वे तो 'गोत्रोदय' से भिन्न हैं तब गोत्रका उदय उनपर अवलम्बित—उनके बिना न हो सकने वाला—कैसे कहा जा सकता है? इसलिये यह विचार श्लोकवार्तिककी दृष्टिसे कुछ ठीक मालूम नहीं होता।

—सम्पादक

† 'आदि' शब्दका उक्त वाच्य मान लेने पर भी लक्षणोंकी सदोषता दूर नहीं हो सकेगी; क्योंकि तब जिन्हें क्षेत्रार्य, जात्यार्य तथा कर्मार्य कहा जायगा उन सबमें उच्चगोत्रका उदय और अहिंसादिकका व्यवहार बतलाना पड़ेगा और वह बतलाया नहीं जासकेगा—आर्यखण्डके सब मनुष्योंको क्षेत्रार्य होनेके कारण उच्च-गोत्री कहना होगा, सावद्य कर्म आर्योंको इधर कर्मार्यकी दृष्टिसे यदि आर्य कहना होगा तो उधर हिंसादिक व्यवहारोंके कारण 'म्लेच्छ' भी कहना होगा, यह विरोध आएगा। साथ ही, प्रत्येक आर्यके लिये जब अहिंसा-दिक व्रतोंका अनुष्ठान अनिवार्य होगा तब आर्यखण्डका कोई भी अविरत सम्यग्दृष्टि आर्य नहीं कहला सकेगा और चारित्रार्य तथा दर्शनार्यके भेद भी निरर्थक हो जायँगे, जिन्हें विद्यानन्दने आर्योंके भेदोंमें परिगणित किया है। इस तरह बहुत कुछ विरोध उपस्थित होगा तथा आर्य-म्लेच्छकी समस्या और भी अधिक जटिल हो जायगी।

—सम्पादक

होनेवाले शकादिक हैं वे सब म्लेच्छ हैं और जो अन्तर-द्वीपोंमें उत्पन्न होते हैं वे भी सब म्लेच्छ ही हैं।" वह श्लोक यह है :—

आर्यखंडोद्भवा आर्या म्लेच्छाः केचित् शकादयः।
म्लेच्छखंडोद्भवा म्लेच्छा अन्तरद्वीपजा अपि ॥

इस श्लोकका उपर्युक्त अर्थ मुझे रुचिकर नहीं लगा, यदि इसका यह अर्थ किया जाय कि 'आर्यखंडमें उत्पन्न होनेवाले आर्य हैं तथा आर्यखंडमें ही उत्पन्न होनेवाले कितने एक शकादिक म्लेच्छ भी हैं, और म्लेच्छ खंडोंमें उत्पन्न होनेवाले म्लेच्छ हैं तथा अन्तर-द्वीपज भी म्लेच्छ हैं,' तो क्या हानि है?*

आगे लिखा है कि श्री विद्यानन्द आचार्यने यवनादिकको म्लेच्छखंडोद्भव म्लेच्छ माना है। परन्तु श्लोकोंसे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता; श्री अमृतचंद्राचार्यने भी शकादिकोंको आर्यखंडोद्भव म्लेच्छ ही माना है और श्री विद्यानन्दाचार्यने भी "कर्मभूमिभवा-म्लेच्छाः प्रसिद्धा यवनादयः" श्लोकसे यवनादिकोंको कर्मभूमि (आर्यखंड †)में होनेवाले म्लेच्छ माना है। तथा जानी हुई सारी दुनियाको पूज्य बाबू साहबने अपने लेखमें आर्यखंड ही स्वीकार किया है। फिर शकादि या यवनादिकोंको म्लेच्छखंडोद्भव म्लेच्छ मानने का क्या प्रयोजन है सो समझमें नहीं आया कृपया समझाना चाहिये ‡।

---

* इसमें कोई हानि नहीं, बल्कि ऐसा ही अर्थ समुचित प्रतीत होता है। चुनाँचे द्वितीय वर्षके 'अनेकान्त' की ५ वीं किरणमें पृ० २७९ पर मैंने ऐसा ही अर्थ करके उसका यथेष्ट स्पष्टीकरण किया है और साथ ही पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीकी इस मान्यताका खण्डन भी किया है कि 'आर्यखण्डोद्भव कोई म्लेच्छ होते ही नहीं; शकादिकको किसी भी आचार्यने आर्यखण्डमें उत्पन्न होने वाले नहीं लिखा, विद्यानन्दाचार्यने भी यवनादिकको 'म्लेच्छखण्डोद्भव' म्लेच्छ बतलाया है।'

—सम्पादक

† 'कर्मभूमि' का अर्थ यदि आर्यखण्ड ही किया जायगा तो म्लेच्छखण्डोंके अधिवासी छूट जायँगे—वे म्लेच्छ नहीं रहेंगे; क्योंकि विद्यानन्दाचार्यने कर्मभूमिज और अन्तरद्वीपजके अतिरिक्त म्लेच्छोंका कोई तीसरा भेद नहीं किया है। आर्यखण्ड और म्लेच्छखण्ड दोनों ही कर्मभूमि होनेसे 'कर्मभूमिज' म्लेच्छोंमें दोनों खण्डोंके म्लेच्छोंका समावेश हो जाता है। 'यवनादयः' पदमें प्रयुक्त हुआ 'आदि' शब्द यवनोंके अतिरिक्त दोनों खण्डोंके शेष सब म्लेच्छोंका संग्राहक है। अतः 'कर्मभूमि' का यहाँ मात्र 'आर्यखण्ड' अर्थ करना ठीक नहीं है। —सम्पादक

‡ वर्तमान शास्त्रीय पैमाइशके अनुसार जानी हुई दुनिया 'आर्यखण्ड' के अन्तर्गत हो जाती है, इसमें तो विवादके लिये स्थान नहीं है। अब रही शक-यवनादिको विद्यानन्दके मतानुसार म्लेच्छखण्डोद्भव म्लेच्छ बतलाने अथवा माननेकी बात, वह 'यवनादयः' पदके वाच्यको पूर्णरूपमें अनुभव न करने आदिकी किसी ग़लतीका परिणाम जान पड़ता है। विद्यानन्दाचार्यने म्लेच्छखण्डोद्भव म्लेच्छोंका कोई अलग उल्लेख नहीं किया है, इसलिये 'यवनादयः' पदमें उन्हींका आशय समझ लिया गया है। इसी ग़लतीके आधार पर तत्त्वार्थसारके उक्त श्लोकका अर्थ कुछ ग़लत हुआ जान पड़ता है। वैसा अर्थ करके ही श्रीमान् बाबू सूरजभानजीने अपने लेखमें विद्यानन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्यके कथनका एक-वाक्यता घोषित की है, जो दूसरा अर्थ करने पर और भी अच्छी तरहसे घोषित होती है।

—सम्पादक

आगे लिखा है कि "सारी पृथिवी पर रहनेवाले सभी मनुष्य आर्य होनेसे उच्चगोत्री भी ज़रूर हैं।" आर्य होने मात्रसे कोई उच्चगोत्री नहीं हो सकता आर्य होनेके साथ साथ शील संयमादि धर्माचरण भी हों तभी उच्चगोत्री हो सकता है जैसा कि आचार्य श्री-विद्यानन्द स्वामीने लिखा है *। उपर्युक्त आर्यता केवल आर्यभूमिमें उत्पन्न होनेकी अपेक्षा है।

आगे लिखा है कि "ये कर्मार्य म्लेच्छखंडोंमें रहने वाले म्लेच्छही हो सकते हैं।" कर्म आर्य म्लेच्छ खंडके रहने वाले म्लेच्छ कैसे हो जायेंगे? फिर उन खंडोंको म्लेच्छ खंड ही क्यों कहा? कर्मार्योंके रहनेसे वह भी आर्य खंड ही कहा जाना चाहिये था। अतः जितने भी ये भेद अभेद आर्योंके हैं वे सब आर्य खंडके रहने वाले आर्योंके ही हैं। म्लेच्छ खंडके रहने वाले म्लेच्छ ही हैं वे आर्य नहीं हो सकते। आर्योंको आर्य खंडमें उत्पन्न होनेकी अपेक्षा और यहां धार्मिक प्रवृत्तियां सम्भव होनेकी अपेक्षा तथा धर्माचरण पालन करनेकी अपेक्षा 'आर्य' कहा है और म्लेच्छोंको म्लेच्छ खंडमें उत्पन्न होनेकी अपेक्षा तथा वहां धार्मिक प्रवृत्तियां असंभव होनेकी अपेक्षा 'म्लेच्छ' कहा है†। जब सारी जानी हुई दुनियां आर्य खंड है तब कर्मार्योंको म्लेच्छ खंडके म्लेच्छ क्योंकर बतलाया? महायोजनके हिसाब-से आर्य खंड ही बहुत बड़ा है, फिर म्लेच्छ खंड कितनी दूर और कहां होंगे। यदि जानी हुई सारी दुनियां आर्य खंड है तो जर्मन जापान रूस फ्रांस इंगलैंड आदि देशोंमें वर्ण व्यवस्था क्यों नहीं? अथवा जर्मन जापान इटली आदि ही म्लेच्छ खंड हैं, और केवल भारतवर्ष आर्य खंड? कृपाकर बतलाइयेगा।

अन्तमें यशस्तिलक, चम्पू, पद्मचरित, रत्नकरण्ड, धर्म-परीक्षा, धर्मरसिक आदि ग्रन्थोंके जो भी श्लोक इस लेखमें उद्धृत किये हैं उनसे तो भले प्रकार यह बात प्रमाणित हो जाती कि अपने धर्माचरणोंसे मनुष्य ऊँच गोत्री है और पापाचरणोंसे नीच गोत्री है अर्थात् अपने धर्माचरणोंसे चांडाल भी ऊँच गोत्री (ब्राह्मण) है और अपने पापाचरणोंसे ब्राह्मण भी नीच गोत्री है, इस बातमें अब कोई भी सन्देह शेष नहीं रहता है।

इस तरह पर इस लेखमें अपने अच्छे बुरे आचरण-के आधार पर ही जीवोंमें अथवा मनुष्योंमें ऊँचता अथवा ऊँच गोत्र तथा नीचता व नीच गोत्र है इस प्रकारकी प्रश्नात्मक चर्चा करके लेखको समाप्त किया

---

* विद्यानन्द स्वामीने ऐसा कहाँ लिखा है उसे स्पष्ट रूपमें बतलाना चाहिये था। उनके "उच्चैर्गोत्रोदयादेरार्याः' इस आर्यलक्षणसे तो जिसे 'आर्य' कहा जायगा उसके उच्चगोत्रका उदय जरूर मानना पड़ेगा—भले ही वह किसी भी प्रकारका आर्य क्यों न हो। यदि क्षेत्रार्य आदि आर्यभेदोंमें उक्त लक्षण संघटित नहीं होता है तो उसे अव्याप्ति दोषसे दूषित सदोष लक्षण कहना चाहिये। ऐसे ही कारणोंके वशवर्ती उक्त लक्षणके सदोष होनेकी कल्पनाकी गई है। और इस-लिये "उपर्युक्त आर्यता केवल आर्यभूमियोंमें उत्पन्न होनेकी अपेक्षा है" ऐसा आगे लिखना कुछ अर्थ नहीं रखता—वह निरर्थक जान पड़ता है।

—सम्पादक

† यदि इन अपेक्षाओंसे ही आर्य और म्लेच्छका कथन हो अथवा माना जाय तो फिर आर्य उच्चगोत्रका उदय और म्लेच्छके लिये नीच गोत्रका उदय अप्रयोजनीय हो जाता है अथवा लाजिमी नहीं रहता, जिसका विद्यानन्द आचार्यने आर्य-मलेच्छके लक्षणोंमें प्रतिपादन किया है; और न आर्यखण्डोद्भव म्लेच्छोंको म्लेच्छ ही कहा जा सकता है। —सम्पादक

जाता है। धर्माचरण, व्रताचरण, संयमाचरण, व्यवहार योग्य कुलाचरण, सद्व्यवहार सभ्य कुलाचरण आदि सब एक ही बात है। इन आचरणोंमें अन्तर केवल इतना ही है कि कोई आचरणमें तो धार्मिकता महारूप से है व कोई आचरणमें अणुरूपसे। इसी तरह पापाचरण असंयमाचरणा निंद्य कुलाचरण असभ्याचरण कुत्सित व्यवहार आदि भी सब एक ही बात है। इन आचरणोंमें भी अन्तर केवल इतना ही है कि कोई आचरणमें तो पाप महा रूपसे है व कोई आचरणमें अणुरूपसे।

अब मैं लेखको समाप्त करके पूज्य बाबू सूरजभानजीसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि लेखमें मुझसे कुछ अनुचित लिखा गया हो तो उसके लिये वे कृपाकर मुझ अल्पज्ञको क्षमा करें तथा मेरे ऊपर वात्सल्य भाव धारण करके किये गये प्रश्नोंका सम्यक् समाधान करके मुझे अनुगृहीत करें।

अनुपम क्षमा

क्षमा अंतःशत्रुको जीतनेमें खड्ग है; पवित्र आचारकी रक्षा करनेमें बख्तर है। शुद्ध भावसे असह्य दुःखमें सम परिणामसे क्षमा रखने वाला मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है।

कृष्ण वासुदेवका गजसुकुमार नामका छोटा भाई महास्वरूपवान और सुकुमार था। वह केवल बारह वर्षकी वयमें भगवान् नेमिनाथके पास संसार त्यागी होकर स्मशानमें उग्र ध्यानमें अवस्थित था। उस समय उसने एक अद्भुत क्षमामय चारित्रसे महासिद्धि प्राप्त की उसे मैं यहाँ कहता हूँ।

सोमल नामके ब्राह्मणकी सुन्दर वर्ण संपन्न पुत्रीके साथ गजसुकुमारकी सगाई हुई थी। परन्तु विवाह होनेके पहले ही गजसुकुमार संसार त्याग कर चले गये। इस कारण अपनी पुत्रीके सुखके नाश होनेके द्वेषसे सोमल ब्राह्मणको भयङ्कर क्रोध उत्पन्न हुआ। वह गजसुकुमारकी खोज करते-करते उस स्मशानमें आ पहुँचा, जहाँ महामुनि गजसुकुमार एकाग्र विशुद्ध भावसे कायोत्सर्गमें लीन थे। सोमलने कोमल गजसुकुमारके सिरपर चिकनी मिट्टीकी बाड़ बनाकर इसके भीतर धधकते हुए अंगारे भरे और उसे ईंधनसे पूर दिया। इस कारण गजसुकुमारको महाताप उत्पन्न हुआ। जब गजसुकुमारकी कोमलदेह जलने लगी, तब सोमल वहाँसे चल दिया। उस समयके गजसुकुमारके असह्य दुःखका वर्णन कैसे हो सकता है। फिर भी गजसुकुमार सम्भाव परिणामसे रहे। उनके हृदयमें कुछ भी क्रोध अथवा द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपनी आत्माको स्थिति स्थापक दशामें लाकर यह उपदेश दिया, कि देख यदि तूने इस ब्राह्मणकी पुत्रीके साथ विवाह किया होता तो यह कन्या-दानमें तुझे पगड़ी देता। यह पगड़ी थोड़े दिनोंमें फट जाती और अन्तमें दुःखदायक होती। किन्तु यह इसका बहुत बड़ा उपकार हुआ, कि इस पगड़ीके बदले इसने मोक्षकी पगड़ी बाँध दी। ऐसे विशुद्ध परिणामोंसे अडिग रहकर सम्भावसे असह्य वेदना सहकर गजसुकुमारने सर्वज्ञसर्वदर्शी होकर अनन्त जीवन सुखको पाया। कैसी अनुपम क्षमा और कैसा उसका सुन्दर परिणाम। तत्त्व ज्ञानियोंका कथन है कि आत्माओंको केवल अपने सद्भावमें आना चाहिये। और आत्मा अपने सद्भावमें आई कि मोक्ष हथेलीमें ही है। गजसुकुमारकी प्रसिद्ध क्षमा कैसी शिक्षा देती है।

—श्रीमद्‌राजचन्द्र

श्वेताम्बर न्यायसाहित्यपर एक दृष्टि

[ले०—पं० रतनलाल संघवी, न्यायतीर्थ–विशारद]

आगम–काल*

विक्रमकी तीसरी-चौथी शताब्दिके पूर्वका श्वे० जैन-न्याय-साहित्यका एक भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है; इसके पूर्वका काल अर्थात् विक्रमसे पांच-सौ वर्ष पहलेसे लगा कर उसके तीनसौ-चारसौ वर्ष बाद तकका काल "आगम-काल" है। मूल-आगम और आगमिक-विषयको स्पष्ट करने वाली निर्युक्तियाँ एवं चूर्णियाँ ही उस समय श्वे० जैन-साहित्यकी सीमा थीं। आगमों पर ही जनताका ज्ञान निर्भर था। भगवान् महावीर स्वामीके निर्वाण कालसे लगा कर निर्धारित आगम-काल तकका निर्मित साहित्य वर्तमानमें इतना पाया जाता है:—११ अंग, १२ उपांग, ५ छेद, ५ मूल, ३० पयन्ना, १२ निर्युक्तियाँ, तत्त्वार्थसूत्र जैसे ग्रंथ एवं कुछेक ग्रंथ और भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त इस कालमें निर्मित अन्य श्वे० ग्रंथोंका पता नहीं चलता है।

विक्रमकी पांचवीं शताब्दिसे जैन साहित्य पल्लवित होने लगा और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों विकसित और प्रौढ़ होता रहा है।

भारतीय-तर्कशास्त्रकी प्रतिष्ठा

भारतीय तर्क-शास्त्रके आदि-प्रणेता महर्षि गौतम हैं इन्होंने ही इस शास्त्रको व्यवस्थितरूप दिया। यद्यपि उनके पूर्व भी उपनिषदों आदि प्राचीन ग्रंथोंमें "आन्वीक्षिकी विद्या" नामसे तर्क-शास्त्रका पता चलता है किंतु भारतीय न्याय-शास्त्रकी मज़बूत नींव डालने वाले गौतम-मुनि ही हैं। इन्होंने ही सर्वप्रथम "न्याय-सूत्र" नामक ग्रंथकी रचना की। इनका काल ईसाकी प्रथम शताब्दि माना जाता है। इसी कालसे भारतीय-प्रांगणमें तर्क-युद्ध प्रारंभ होता है और आगे चल कर शनैः शनैः सभी मतानुयायी क्रमशः इसी मार्गका अवलम्बन लेते हैं। यहींसे भारतीय दर्शनोंकी विचार-प्रणाली तर्क-प्रधान बन जाती है और उत्तरोत्तर इसीका विकास होता चला जाता है।

सर्वप्रथम यह सोचना आवश्यक है कि महर्षि गौतमने इस प्रणालीकी नींव क्यों डाली? बात यह थी कि ब्राह्मणोंने स्वार्थवश-सत्ताके बल पर वैदिक-धर्म पर एकाधिपत्य जमा लिया था, एवं धार्मिक-क्रिया-कर्मोंमें इस प्रकारकी विकृति पैदा कर दी थी कि जिससे जन-साधारणका शोषण होता था और उनके दुःखोंमें वृद्धि होती जाती थी। इसलिये जनताका झुकाव तेज़ीसे जैन-धर्म और बौद्धधर्मकी ओर होने लग गया था। क्योंकि इन दोनोंकी कार्य प्रणाली समान-वाद और मध्यममार्ग पर अवलम्बित थी। ये जातिवादका (वर्ण-व्यवस्थाका) और यज्ञ आदि निरुपयोगी क्रिया काण्डोंका निषेध करते थे, एवं यह प्रतिपादन करते थे कि सभी मनुष्य समान हैं, सबके हित एक हैं, प्रत्येक व्यक्ति (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) धर्मका आराधन कर मुक्ति प्राप्त कर

---

* इसका दृष्टिकोण श्वेताम्बर-साहित्य धाराकी अपेक्षासे है। लेखक

सकता है। शास्त्र-श्रवणका भी प्रत्येकको समान-अधिकार है; आदि आदि। इन कारणोंसे जनता वैदिक-धर्मकी छत्र-छायाका त्याग करके जैनधर्म और बौद्ध-धर्मकी छत्र-छायाके नीचे तेजीसे आने लग गई थी। श्रमण संस्कृति (जैन और बौद्ध संस्कृतिका सम्मिलित नाम) ने थोड़े ही समयमें जनताके बल पर राजा महाराजाओंके शासन-चक्र तकको भी अपना अनुयायी बना लेनेकी शक्ति प्राप्त कर ली थी।

इस प्रकार श्रमण-संस्कृतिके क्रियात्मक-प्रभावको देखकर गौतम आदि वैदिक विद्वानोंने इस प्रभावका निराकरण करनेका विचार किया और इस प्रकार यह विचार ही तर्क-शास्त्रकी उत्पत्तिका मूल कारण हुआ।

भारतीय तर्क-शास्त्रका अपर नाम न्याय-शास्त्र भी है। इसका कारण यह है कि इस शास्त्रके आदि आचार्य महर्षि गौतम द्वारा रचित तर्क-शास्त्रके आदि ग्रंथका नाम न्याय-सूत्र है और इसीलिये प्रत्येक दर्शनका तर्क-शास्त्र "न्याय-शास्त्र" के नामसे भी विख्यात हो गया है; जैसे कि सांख्य-न्याय, बौद्ध-न्याय, जैन-न्याय इत्यादि।

बौद्ध और जैन न्याय-शास्त्र

जब बौद्ध विद्वानोंको महर्षि गौतमकी इस रहस्यमय नीतिका पता चला तो उन्होंने भी तार्किक प्रणालीका आश्रय लिया। बौद्ध-तार्किकोंमें सर्वप्रथम और प्रधान आचार्य नागार्जुन हुआ। इनका काल ईसाकी दूसरी शताब्दी है। ये महान् प्रतिभाशाली और प्रचण्ड तार्किक थे। इन्होंने 'माध्यमिक-कारिका" नामक तर्कका प्रौढ़ और गंभीर ग्रंथ बनाया, एवं बौद्ध-साहित्यका मूल आधार **"शून्यवाद"** निर्धारित किया। इसके आधार पर वैदिक मान्यताओंका और वैदिक-मान्यतानुकूल तर्कोंका प्रबल खण्डन किया। दिङ् नागादि पश्चात्वर्ती बौद्ध तार्किकोंने इस विषयको और भी आगे बढ़ाया और इस प्रकार इस तर्क-शास्त्रीय युद्धकी गंभीर नींव डाल कर अपने प्रतिपक्षियोंको चिर-काल तक विवश किया साथ ही भारतीय तर्क-शास्त्रकी भव्य इमारतका कला-पूर्ण निर्माण किया।

इस तर्क-युद्धमें जैनेतर तार्किक विद्वान् जैन-दर्शन पर भी छींटे उछालने लगे और भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित धर्मका उपहास करने लगे; तब जैन-विद्वानोंको भी जैनधर्मकी रक्षा करनेकी चिन्ता सताने लगी। इन्होंने सोचा कि अब केवल "आगमों" पर निर्भर रहनेसे ही कार्य नहीं चलेगा और न केवल 'आगम-रक्षा' से 'जिन-शासन' की रक्षा हो सकेगी। इसलिये जिस प्रकार बौद्ध-विद्वानोंने सम्पूर्ण बौद्ध-साहित्यकी विवेचना और रक्षाका आधार 'शून्यवाद' निर्धारित किया; उसी प्रकार इन विद्वान् साधुओंने भी जैन-साहित्यकी विवेचना और रक्षका आधार **'स्याद्वाद-सिद्धान्त'** रक्खा। बौद्ध और जैन-न्याय साहित्य-रूप भवनकी आधार शिलाका संस्थापन जिन कारणोंसे हुआ है, उनका यह संक्षिप्त दिग्दर्शन समझना चाहिये।

तर्क-शास्त्रकी उत्पत्ति और विकासके कारणोंको जान लेनेके बाद यह जानना आवश्यक है कि धर्म, दर्शन और तर्ककी परिभाषा क्या है? मुख्यतया क्रियात्मक चारित्रका नाम धर्म है, द्रव्यानुयोग सम्बन्धी ज्ञानको 'दर्शन' कहते हैं और दर्शनरूप ज्ञानके सम्बन्धमें ऊहापोह करना, भिन्न भिन्न रीतिसे विश्लेषण करना 'तर्क' अथवा 'न्याय' है।

यद्यपि श्वे० जैन-न्याय-साहित्यका प्रारम्भ सिद्धसेन दिवाकरके कालसे ही हुआ है; फिर भी जैन न्यायका मूल बीज विक्रमकी प्रथम शताब्दिमें होने वाले, संस्कृत

जैन वाङ्मयके आदि-लेखक आचार्य उमास्वाति वाचक द्वारा ग्रंथराज "तत्वार्थ-सूत्र" के प्रथम अध्यायके छठे सूत्र "**प्रमाणनयैरधिगमः**" में सन्निहित है। सम्पूर्ण जैनन्याय साहित्यका आलोचन किया जाय तो पता चलेगा कि उपर्युक्त सूत्रका ही सम्पूर्ण जैन न्याय-साहित्य भाष्य रूप है। अर्थात् प्रमाण और नयके आधार पर ही जैनेतर सभी दर्शनोंकी मान्यताओंकी परीक्षा की गई है और जैनदर्शन-सम्मत सिद्धान्तोंकी नैयायिक नींव डाली गई है।

स्याद्वाद

प्रमाण और नयका समन्वय ही 'स्याद्वाद' है। अपेक्षावाद, अनेकान्तवाद, आदि शब्द इसके पर्यायवाची हैं। मूल आगमोंमें **'सिय अत्थि' 'सिय णत्थि'** और **'सिय अवत्तव्वं'** अर्थात् स्यादस्ति, स्याद् नास्ति और स्यादवक्तव्यं (उर्फ़ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य) ये तीन ही भाग मिलते है, अतः स्याद्वादका यही आगमोक्त रूप है। इन तीनोंकी सहायतासे ही व्यष्टि रूपसे और समष्टि रूपसे सात भाग बनते हैं। न अधिक बन सकते हैं और न कम ही। कहा जाता है कि सर्व प्रथम ये सात भांगे प्रथम शताब्दिमें होने वाले प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा विरचित 'पंचास्तिकाय' 'प्रवचन-सार' में मिलते हैं, परन्तु चौथी शताब्दिके बादसे ही इस विषयक साहित्यका विशेष विस्तार और विकास होता है, और अन्तमें शनैः शनैः बारहवीं शताब्दि तक यह विषय विकासकी चरम कोटिको पहुँच जाता है। बौद्ध दर्शन एवं वैदिक दर्शनोंको पदार्थ विवेचन-पद्धतिमें और जैनदर्शनकी पदार्थ विवेचन-पद्धतिमें इस स्याद्वादके कारणसे ही महदन्तर है। सम्पूर्ण जैन-न्यायका भवन इसी स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) के ऊपर ही टिका हुआ है। कहना न होगा कि जैनदर्शनके पास दूसरे दर्शनोंकी मान्यताओंका प्रामाणिक रूपसे खंडन करनेके लिये यही—स्याद्वाद ही—एक अमोघ अस्त्र सिद्ध हुआ है। साराँश यही है कि जैन-न्यायका एक ही दृष्टिकोण है और वह है स्याद्वाद-पद्धतिसे—अनेकान्त-पद्धतिसे वस्तु स्थितिका विवेचन किया जाना।

मूल, चूर्णि, निर्युक्ति, टीका आदि पंचांगी आगम साहित्यमें स्याद्वादका सूक्ष्म और आवश्यक विवेचन मिलता है और ज्यों ज्यों दार्शनिक संघर्षण चलता है, त्यों त्यों स्याद्वादका स्वरूप और विवेचन गंगाके प्रवाहके समान शीतल, विशाल, विस्तृत और आल्हादक होता चला जाता है।

विश्व, आत्मा, ईश्वर, प्रकृति आदि मूलभूत तत्वोंके आदि अंतका वर्णन दार्शनिकोंने जिस प्रकार किया है, और जैसा उनका एकान्त एकांगी रूप माना है; एकान्तवादके कारण वह पूर्ण सत्व नहीं कहा जा सकता। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अर्थात् लोकालोक रूप संसार का एकांगी स्वरूप मान लेने पर ही दार्शनिक मतभेद और धार्मिक कलहकी उत्पत्ति हुई है और होती है। इन क्लेशोंको दूर करनेके लिये ही 'स्याद्वाद'की उत्पत्ति और इस विषयक साहित्यका विकास हुआ है। प्रत्येक पदार्थ विभिन्न कारणोंसे और विभिन्न अपेक्षाओंसे अनेक स्वरूप है। वह न एकान्त नित्य है और न एकान्त रूप से अनित्य ही। द्रव्य-अपेक्षासे नित्य है और पर्याय-अपेक्षासे अनित्य। इसी तरहसे स्वद्रव्य क्षेत्र आदिके हिसाबसे वह अस्तिरूप है और पर द्रव्य-क्षेत्र आदिके लिहाजसे नास्तिरूप है। यह बात जड़ और चेतन दोनों ही प्रकारके तत्वोंके लिये समझना चाहिये। यही स्याद्वादका रहस्य है।

जिन जैनेतर दार्शनिकोंने इसे संशयवाद या अनिश्चयवाद कहा है, निश्चय ही, उन्होंने इसका गंभीर अध्ययन किये बिना ही ऐसा लिखा है। आश्चर्य तो इस बातका है कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध सभी विभिन्न दार्शनिकों ने इस सिद्धान्तका शब्द रूपसे खंडन करते हुए भी प्रकारांतरसे अपने अपने दार्शनिक-सिद्धान्तोंमें विरोधोंके उत्पन्न होने पर उनकी विविधताओंका समन्वय करनेके लिए इसी सिद्धान्तका आश्रय लिया है। महामति मीमांसकाचार्य कुमारिलभट्टने अपने गंभीर ग्रन्थोंमें और सांख्य, न्याय, बौद्ध आदि दर्शनोंके अनेक आचार्योंने अपने अपने ग्रन्थोंमें प्रकारान्तरसे इसी सिद्धान्तका आश्रय लिया है। इस सम्बन्धमें पं० हंसराज जी लिखित "दर्शन और अनेकन्तवाद" नामकी पुस्तक पठनीय है।

स्याद्वादके महत्त्वके विषयमें अनेक प्राचीन आचार्योंने संख्यातीत श्लोकों द्वारा अत्यन्त तर्क पूर्ण श्रद्धा और स्तुत्य भावनामय भक्ति प्रकाशितकी है। उनमें से कुछ उदाहरण निम्न प्रकारसे हैः—

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण निव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरूणो णमो अणेगंतवादस्स॥
भद्दं मिच्छादंसणसमूहमइयस्स अमयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स॥
—सिद्धसेन दिवाकर

आदीपमाव्योम सम स्वभावं, स्याद्वादमुद्रानतिभेदिवस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्य,—दितित्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः॥
—हेमचन्द्राचार्य

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी॥
परमागमस्य बीजं, निषिद्धजात्यन्धसिन्धुर-विधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥
—अमृतचन्द्र सूरि

इनका संक्षिप्त भावार्थ इस प्रकार हैः—

जिसके अभावमें लोकव्यवहारका चलना भी असंभव है, उस त्रिभुवनके अद्वितीय गुरु 'अनेकान्तवाद' को असंख्यात बार नमस्कार है ॥१॥

मिथ्यादर्शनोंके समूहका समन्वय करनेवाला, अमृतको देनेवाला, मुमुक्षुओं द्वारा सरल रीतिसे समझने योग्य ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का प्रवचन-स्याद्वाद सिद्धान्त-कल्याणकारी हो ॥२॥

दीपकसे लगाकर आकाश तक अर्थात् सूक्ष्मसे सूक्ष्म वस्तुसे लेकर बड़ीसे बड़ी वस्तु भी 'स्याद्वाद' की आज्ञानुवर्तिनी है। यदि कोई भी पदार्थ चाहे वह छोटा हो या बड़ा, स्याद्वाद सिद्धान्तके अनुसार अपना स्वरूप प्रदर्शित नहीं करेगा तो उसकी वस्तु-स्थितिका वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकेगा। हे भगवान्! यह 'स्याद्वाद' से अनभिज्ञ लोगोंका प्रलाप ही है, जो यह कहते हैं कि "कुछ वस्तु तो एकान्त नित्य हैं और कुछ एकान्त अनित्य।" अतः विद्वान् पुरुषोंको सभी वस्तुएँ द्रव्यापेक्षया नित्य और पर्यायापेक्षया अनित्य समझना चाहिये ॥३॥

जिस प्रकार मक्खनके लिये दहीको मथनेवाली स्त्री दोनों हाथोंमें रस्सी (मन्थान रज्जु) को पकड़े रहती है। एक हाथमें ढील देती है और दूसरे हाथसे उसे खींचती है, तभी मक्खन प्राप्त हो सकता है। यदि वह एक ही हाथसे कार्य करे अथवा दूसरे हाथकी रस्सीको बिल्कुल छोड़ देवे तो सफलता नहीं मिल सकती है; यही स्याद्वादकी नीतिका भी रहस्य है। इस सिद्धान्तमें भी "ढील देना और खींचना" रूप क्रियाको वस्तु विवेचनके समय क्रमसे गौणता और मुख्यता समझना चाहिये। प्रत्येक वस्तु अनेक धर्ममय है। उनमेंसे एक धर्मको मुख्यता और शेष धर्मोंको उनका निषेध नहीं

करते हुए गौणता प्रदान करने पर ही वस्तु-तत्त्वका निर्णय हो सकता है ॥४॥

स्याद्वाद सिद्धान्त परमागमका बीज है, इसने जन्मान्ध-गज-न्यायके समान एकान्तवाद रूप मिथ्या-धारणाका सर्वथा नाश कर दिया है। यह वस्तुमें संनिहित अनन्त धर्मोंको अपेक्षा करता हुआ, विरोधोंको विविधताके रूपमें समन्वय करनेवाला है। ऐसे सिद्धान्त शिरोमणि "अनेकान्तवाद" को मैं अनत बार नमस्कार करता हूँ ॥५॥

इसलिये स्याद्वादको संशयवाद या अनिश्चयवाद कहना निरी मूर्खता है। स्याद्वाद सर्वानुभवसिद्ध, सुव्यवस्थित, सुनिश्चित, और सर्वथा निर्दोष सिद्धान्त है। संपूर्ण धार्मिक क्लेशोंको दूर करनेके लिये, सभी मन-मतान्तरोंका समन्वय करके उनको एक ही प्लेट-फार्म पर लानेके लिये, एवं विश्वके बिखरे हुए और विरोधी रूपसे प्रतीत होनेवाले लेखों विचारों तथा हजारों संप्रदायों को एक ही सूत्रमें अनुस्यूत करनेके लिये स्याद्वाद-जैसा कोई दूसरा श्रेष्ठ सिद्धान्त है ही नहीं। विश्वकी सभ्यत, संस्कृति और शांतिके विकासके लिये जैनदर्शन और जैनतर्क-शास्त्रकी यह एक महान् देन है। किन्तु खेद है कि आजका जैनसमाज अनेक संप्रदायोंमें विभाजित होकरके रत्न जैसे सुन्दर सिद्धान्तोंकी शीशेके टुकड़ोंके रूपमें परिणत करता हुआ भगवान् महावीर स्वामीके नामपर विश्वासघात कर रहा है! अर्थात् अनेकान्तवादी स्वयं सांप्रदायक व्यामोहसे एकान्तवादी हो गया है !!

प्रमाण और नय पर ऐतिहासिक दृष्टि

यह पहले लिखा जा चुका है कि प्रमाण और नय का समन्वय ही स्याद्वाद-सिद्धान्त है; अतः इस विषय पर भी एक सरसरी ऐतिहासिक दृष्टि डालना आवश्यक है। स्वपर-निश्चायक ज्ञान ही प्रमाण है। जैन वाङ्मय-में ज्ञान-दर्शनकी दो पद्धतियाँ उपलब्ध हैं। एक आगमिक और दूसरी तार्किक। आगमिक पद्धतिके भी दो रूप मिलते हैं। एक तो विशुद्ध-आगमिक और दूसरी तर्कांश मिश्रित-आगमिक। विशुद्ध आगमिक-ज्ञान निरूपण पद्धतिमें ज्ञानके पाँच भेद किये गये हैं। मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यय और केवल। इनको आगमिक कहनेका कारण यह है कि आत्माकी मूलभूत शुद्धि और अशुद्धिके विवेचनमें जो 'कर्मसिद्धान्त' का वर्णन किया जाता है, उसमें ज्ञानावरण कर्मके पाँच ज्ञान-भेदके अनुसार किये गये हैं। तर्क-संघर्षणसे उत्पन्न प्रमाणके प्रत्यक्ष और परोक्षरूप भेदोंके आधारसे प्रत्यक्षावरण और परोक्षावरणरूपभेद ज्ञानावर्ण कर्मके नहीं किये गये हैं। यदि ज्ञानावर्णके भेद प्रत्यक्षावर्ण और परोक्षावर्णके रूपमें किये जाते तो यह तर्कप्रधान ज्ञान-विवेचन-प्रणाली कहलाती। किन्तु ऐसा न होनेसे यह अतिविशुद्ध और प्राचीन आगमिक-ज्ञान-प्रणाली है।

तर्कमिश्रित आगमिक-ज्ञान पद्धतिमें ज्ञान रूप प्रमाणके ४ विभाग किये गये हैं। १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, और ४ आगम। तदनुसार विशुद्ध आगमिक ज्ञान पद्धतिके भेदोंका समावेश प्रत्यक्षमें समझना चाहिये और शेष भेद तर्क-संघर्षसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा समझना चाहिये। श्री ठाणांग सूत्रमें "प्रत्यक्ष और परोक्ष" तथा "प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम" इस प्रकार दोनों भेद वाली प्रणालीका उल्लेख पाया जाता है। इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद वाली प्रणाली तो स्पष्ट रूपसे विशुद्ध तार्किक ही है। श्री भगवती सूत्रमें केवल चार भेद वाली प्रणालीका उल्लेख पाया जाता है। श्री अनुयोग द्वारा सूत्रमें चार भेद वाली प्रणालीका उल्लेख किया जाकर प्रत्यक्ष दो

भागोंमें बांट दिया गया है। एक भागमें मतिज्ञानका और दूसरेमें अवधि आदि तीनका समावेश किया गया है श्री नन्दी सूत्रमें भी अनुयोगद्वारके समान ही प्रत्यक्षके दो भेद किये जाकर एकमें मतिज्ञानको और दूसरेमें अवधि आदि तीनको रक्खा है। किन्तु परोक्ष वर्णनमें पुनः मति श्रुति दोनोंका समावेश कर दिया है; यह अनुयोगद्वारकी अपेक्षा नंदी सूत्रकी विशेषता है। इस प्रकार आगमोंमें भी मिलनेवाली तर्कांशमिश्रित ज्ञान प्रणालीका यह अति स्थूल रेखा दर्शन समझना चाहिये।

विशुद्ध तार्किक ज्ञान-प्रणालीका एक ही रूप पाया जाता है और वह है प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद वाली प्रणाली। सम्पूर्ण जैन संस्कृत वाङ्मयमें सर्व प्रथम यह प्रणाली आचार्य उमास्वाति कृत "तत्त्वार्थसूत्र" में पाई जाती है। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण और दिगम्बराचार्य भट्टाकलंकदेवने इतना विश्लेषण कर पूर्णरीत्या समर्थन किया; और तत्पश्चात् जिनेश्वर सूरि, वादिदेव सूरि हेमचन्द्राचार्य तथा उपाध्याय यशोविजयजी आदि श्वेताम्बर आचार्योंने और माणिक्यनन्दी तथा विद्यानन्द आदि दिगम्बर आचार्योंने भी अपने अपने न्याय ग्रन्थोंमें इस प्रणालीको पूरी तरहसे संगुफित कर दिया जो कि अद्यापि सर्वमान्य है।

इस प्रणालीमें प्रत्यक्षके दो भाग किये गये हैं:— १ सांव्यवहारिक और पारमार्थिक। प्रथम भागमें मति, श्रुतिको स्थान दिया गया है और दूसरेमें अवधि, मनःपर्यय और केवलको इस प्रकार प्रत्यक्ष भेदमें विशुद्ध आगमिक पद्धतिकी समस्याको केवल हल कर दिया है और परोक्षमें तार्किक-संघर्षसे उत्पन्न प्रमाणके भेदोंका समावेश कर दिया गया है। जैनेतर दार्शनिकों ने जितने भी प्रमाण माने हैं, उन सबका समावेश परोक्षके अन्तर्गत कर लिया गया है। जैनदृष्टिसे परोक्ष के ५ भेद किये हैं, १ स्मृति, २ प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, और ५ आगम। इस प्रकार सारांश रूप से यह कहा जा सकता है कि संपूर्ण प्रमाण वादको जैन न्यायाचार्योंने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपमें सुव्यवस्थित रूपसे संघटित कर दिया है, जो कि सम्पूर्ण जैन वाङ्मयमें निर्विवाद रूपसे सर्वमान्य हो चुका है।

नयवादकी विकास-प्रणाली प्रमाणवादकी विकास प्रणालिके समान विस्तृत नहीं है। मूल आगम-ग्रंथोंमें सात नयोंका उल्लेख पाया जाता है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर छह नय ही मानते हैं। वे नैगमको स्वतन्त्र नयकी कोटिमें नहीं गिनते है। द्रव्यार्थिक दृष्टिकी मर्यादा संग्रह नय और व्यवहार नय तक ही स्वीकार करते हैं। शेष चार नयोंको पर्यायार्थिक दृष्टिकी मर्यादाके अन्तर्गत समझते हैं। इन आचार्यके पूर्व कोई षट्नयवादी थे या नहीं, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। इसलिये यह कहा जाता है कि आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ही आदि षट्-नयवादी हैं।

प्राचीन परंपरा द्रव्यार्थिक दृष्टिकी मर्यादा ऋजुसूत्र नय तक स्वीकार करती है; किन्तु सिद्धसेन-कालके पश्चात्, यह मर्यादा व्यवहारनय तक ही अनेक आचार्यों द्वारा स्वीकार करली गई है। समर्थ आगमिक विद्वान् जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण एवं प्रचंड नैयायिक श्री विद्यानन्द आदि आचार्यों द्वारा चर्चित नयवाद-चर्चा उपर्युक्त कथनका समर्थन करती है।

आगम-प्रसिद्ध सप्त नयवाद और सिद्धसेनीय षट्-नयवादके अतिरिक्त जैन संस्कृत साहित्यके आदि स्रोत, आचार्य प्रवर वाचक उमास्वातिकी तीसरी नय-वाद-भेद-प्रणालि भी देखी जाती है। ये 'नैगम' से 'शब्द' तक ५ नय स्वीकार करते हैं; और अंतमें 'शब्द' के तीन भेद करके आगम प्रसिद्ध शेष दो नयोंका भी समावेश

कर देते हैं। देखा जाय तो इन तीनों परम्पराओंमें केवल विवेचन-प्रणालिकी भिन्नता है, तात्विक-दृष्टिसे कोई *खास उल्लेखनीय भिन्नता नहीं है।*

विक्रमकी बारहवीं शताब्दिमें होनेवाले, दार्शनिक जगतके महान् विद्वान् और प्रबल वाग्मी श्री वादिदेव-सूरि आगम-प्रसिद्ध नयवाद प्रणालिका समर्थन करते हुए नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्रको 'अर्थनय' की कोटिमें रखते हैं और शब्द, समभिरूढ़ और एवं-भूतको 'शब्दनय' की कोटिमें गिनाते हैं। किन्तु पूर्व तीनों नयोंको द्रव्यार्थिककी श्रेणीमें रखकर और शेष चारको पर्यायार्थिककी श्रेणीमें रखकर सिद्धसेनीय मर्यादाका समर्थन करते हैं।

यहाँ तक आगम-काल, भारतीय-न्याय-शास्त्रकी उत्पत्ति और उसके विकासके कारण, बौद्ध और जैन न्याय शास्त्रकी आधार-शिला, स्याद्वाद सिद्धान्त और उसके शाखारूप प्रमाण एवं नयका ऐतिहासिक वर्गी-करण आदि विषयोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा चुका है। न्याय ग्रंथोंमें वर्णित हेतुवाद एवं अन्यवादों पर दृष्टि डालनेकी इच्छा रखते हुए भी विस्तार-भयसे ऐसा नहीं करके; प्रसिद्ध प्रसिद्ध जैन न्यायाचार्योंका ऐतिहासिक काल-क्रम बतलाते हुए, तथा संपूर्ण न्याय साहित्य पर एक उपसंहारात्मक सरसरी दृष्टि डालते हुए यह लेख समाप्त कर दिया जायगा।

कुछ प्रसिद्ध जैन न्यायाचार्य

१ सिद्धसेन दिवाकर❀—श्वेताम्बर जैन न्याय-साहित्यके ये ही आद्य आचार्य हैं। इनका काल विक्रमकी तीसरी-चौथी-पाँचवीं शताब्दिमेंसे कोई शताब्दी है। ये जैनधर्म और जैन साहित्यके महान्‌प्रतिष्ठापक और प्रतिभा संपन्न समर्थ आचार्य थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थोंमेंसे सम्मति तर्क, न्यायावतार, तथा २२ द्वात्रिंशिकाऐं उपलब्ध हैं।

२ **मल्लवादी क्षमाश्रमण**—इनका काल विक्रमकी पाँचवीं शताब्दि है। इनका बनाया हुआ न्याय-ग्रन्थ "नय चक्रवाल" सुना जाता है, जो कि दुर्भाग्यसे अनुपलब्ध है। कहा जाताहै कि इन्होंने शीलादित्य राजाकी सभामें बौद्धोंको हराया था और उन्हें सौराष्ट्र देशमेंसे निकाल दिया था।

३ **सिंहक्षमाश्रमण**—इनका काल सातवीं शताब्दि माना जाता है। इन्होंने "नय-चक्रवाल" पर १८ हज़ार श्लोक प्रमाण एक सुन्दर संस्कृत टीका लिखी है। इसकी प्रति अस्त व्यस्त दशामें और अशुद्ध रूपसे पाई जाती है। उच्चकोटिके दार्शनिक ग्रंथोंमें इसकी गणनाकी जाती है।

४ हरिभद्रसूरि—इनका अस्तित्व-काल विक्रम ७५७से ८५७ तकका सुनिश्चित हो चुका है। ये 'याकिनी-महत्तरासूनु' के नामसे प्रसिद्ध हैं और १४४४ ग्रंथों-के प्रणेता कहे जाते हैं। इन्हें भारतीय साहित्य-कारोंकी सर्वोच्च पंक्तिके साहित्यकारोंमेंसे समझना चाहिये। ये अलौकिक प्रतिभासंपन्न और महान् मेधावी, गंभीर न्यायाचार्य थे। अनेकान्तजयपता-का, षड्दर्शन समुच्चय, शास्त्रवार्तासमुच्चय, अने-कान्तवाद प्रवेश धर्मसंग्रहणी, न्यायविनिश्चय (?); आदि इन द्वारा रचित न्यायके उच्चकोटिके ग्रंथ हैं।

५ **अभयदेव सूरि**—ये विक्रमकी १०वीं शताब्दिके उत्तरार्ध और ११वींके पूर्वार्धमें हुए। ये तर्क-

---

❀ सिद्धसेन दिवाकर और आचार्य हेमचन्द्र पर विस्तृत विचार जाननेकी इच्छा रखनेवाले पाठक मेरे द्वारा लिखित और "अनेकान्त" वर्ष २रे की किरण ४, ५, ६ और ९ एवं १०में प्रकाशित इन आचार्य विषयक निबन्ध देखनेकी कृपा करें। —लेखक

पंचानन और न्यायवनसिंहकी उपाधिसे सुशोभित थे। नवाँगीवृत्तिकार अभयदेवसे इन्हें भिन्न समझना चाहिये। इन्होंने सिद्धसेन दिवाकर रचित सम्मति तर्क पर पचीस हज़ार श्लोक प्रमाण न्याय शैली पर एक विस्तृत टीका लिखी है। यह अनेक दार्शनिक-ग्रन्थोंका मंथन किया जाकर प्राप्त हुए नवनीतके समान अति श्रेष्ठ दार्शनिक ग्रंथ हैं। दशवीं शताब्दि तकके विकसित भारतीय दर्शनोंके ग्रन्थोंकी खाता बहीके रूपमें यह एक सुन्दर संग्रह ग्रंथ है।

६ **चन्द्रप्रभ सूरि**—इनका काल विक्रमकी १२वीं शताब्दि (११४९) है। इन्होंने दर्शन-शुद्धि और प्रमेयरत्न कोश नामक न्यायग्रन्थकी रचना की है। कहा जाता है कि इन्होंने सं० ११५८ में पूर्णिमा गच्छकी स्थापना की थी।

७ **वादिदेवसूरि**—इनका काल विक्रम सं० ११३४ से १२२६ तकका है। इन्होंने 'प्रमाण नयतत्त्वालोक' नामक सूत्रबद्ध न्याय-ग्रन्थकी रचना करके उसपर चौरासी हज़ार श्लोक प्रमाण विस्तृत और गंभीर 'स्याद्वाद रत्नाकर' नामक टीकाका निर्माण किया है। यह टीका-ग्रंथ भी जैन न्यायके चोटीके ग्रंथोंमें से है। **"प्रमेयरत्नकोटीभिः पूर्णो रत्नाकरो महान्"** पंक्तिसे इसकी महत्ता और गुरुता आँकी जा सकती है। कहा जाता है कि सिद्धराज जयसिंहकी राजसभामें दिगम्बर मुनि कुमुदचन्द्राचार्यको वाद-विवादमें इन्होंने पराजित किया था। ये वाद-विवाद करनेमें परम कुशल थे; इसीलिये "देव-सूरि" से 'वादिदेव-सूरि' कहलाये।

८ **हेमचंद्राचार्य**—इनका सत्ता-समय विक्रम ११४५ से १२२९ तक है। इनकी अगाध बुद्धि, गंभीर ज्ञान और अलौकिक प्रतिभाका अनुमान करना हमारे लिये कठिन है। कहा जाता है कि इन्होंने अपने साधुचरित जीवनमें साढ़े तीन करोड़ श्लोक प्रमाण साहित्यकी रचना की थी। न्याय ग्रन्थोंमें प्रमाण-मीमांसा, अन्ययोग-व्यवछेद और अयोग-व्यवछेद नामक द्वात्रिंशिकाओंकी रचना आपके द्वारा हुई पाई जाती है।

९ **रत्नप्रभसूरि**—ये वादिदेवसूरिके शिष्य हैं, अतः वादिदेवसूरिका जो समय है वही इनका भी समझना चाहिये। प्रमाणनय-तत्त्वालोकपर इन्होंने पाँच हजार श्लोक प्रमाण 'रत्नाकराव-तारिका' नामक टीका-ग्रन्थ लिखा है, जिसकी भाषा और शैलीको देख कर हम इसे 'न्यायकी कादम्बरी' भी कह सकते हैं।

१० **शांत्याचार्य**—इनका काल विक्रमकी ११वीं (?) शताब्दि है। इन्होंने सिद्धसेन दिवाकर-रचित न्यायावतारके प्रथम श्लोकके आधार पर ही एक वार्तिक लिखा है, जो कि प्रमाण-वार्तिक भी कहा जाता है। इसी वार्तिक पर इन्होंने २८७३ श्लोक प्रमाण 'प्रमाण-प्रमेय-कलिका' नामक टीका भी लिखी है जो प्रकाशित हो चुकी है, किन्तु अनेक अशुद्धियाँ रह गई है।

११ **मल्लिषेणसूरि**—ये चौदहवीं शताब्दिमें हुए हैं। आपने आचार्य हेमचन्द्र रचित 'अन्य योगव्यव-छेद' नामक द्वात्रिंशिका पर सं० १३४९ में तीन हज़ार श्लोक प्रमाण "स्याद्वादमंजरी" नामक व्याख्या ग्रंथ लिखा है। इसकी भाषा प्रसाद-गुण-सम्पन्न है और विषय-प्रवाह शरद-ऋतुकी नदीकी प्रवाहके समान सुन्दर और आल्हादक है। षट् दर्शनोंका संक्षिप्त और सुन्दर ज्ञान कराने वाली इसके जोड़की दूसरी पुस्तक मिलना कठिन है।

१२ **गुणरत्नसूरि**—ये पन्द्रहवीं शताब्दिमें हुए हैं। इन्होंने हरिभद्रसूरि रचित "षट्-दर्शन-समुच्चय" पर १२५२ श्लोक प्रमाण "तर्क-रहस्य-दीपिका" नामक एक भावपूर्ण टीका लिखी है। इसमें भी षट्-दर्शनोंके सिद्धान्तों पर अच्छा विवेचन किया गया है। दार्शनिक-ग्रंथोंकी कोटिमें इसका भी अपना विशेष स्थान है।

१३ **उपाध्याय यशोविजय जी**—जैन-न्याय साहित्य रूप भव्य भवनके पूर्ण हो जाने पर उसके स्वर्ण-कलश-समान ये अन्तिम जैन न्यायाचार्य हैं। ये महान् मेधावी और साहित्य-सृजनमें अद्वितीय अव्याहत गति-शील थे। इनकी लोकोत्तर प्रतिभा और अगाध पांडित्यको देखकर काशीकी विद्वत् सभा ने इन्हें 'न्याय-विशारद' नामक उपाधिसे विभूषित किया था। तत्पश्चात् सौ ग्रन्थोंका निर्माण करने पर इन्हें 'न्यायाचार्य' का विशिष्ट पद प्राप्त हुआ था और तभीसे ये "शत-ग्रन्थोंके निर्माता" रूपसे प्रसिद्ध भी हैं। तर्क भाषा, न्यायलोक, न्यायखंड-खाद्य, स्याद्वाद, कल्पलता आदि अनेक न्यायग्रंथ आप द्वारा रचित पाये जाते हैं। इनका काल १८वीं शताब्दि है।

इन उल्लिखित आचार्योंके अतिरिक्त अन्य अनेक जैन नैयायिक ग्रंथकार हो गये हैं; किन्तु भयसे इस लेख में कुछ प्रमुख प्रमुख आचार्योंका ही कथन किया जा सका है। उपाध्याय यशोविजय जीके पश्चात् जैन-न्याय-साहित्यके विकासकी धारा रुक जाती है और इस प्रकार चौथी शताब्दि के अन्तसे और पांचवींके प्रारम्भ से जो जैन न्याय-साहित्य प्रारम्भ होता है, वह १८वीं शताब्दि तक जाकर समाप्त दो जाता है।

उपसंहार

संपूर्ण जैन न्याय-ग्रंथोंमें षट्-दर्शनोंकी लगभग सभी मान्यताओंका स्याद्वादकी दृष्टिसे विश्लेषण किया गया है। और अन्तमें इसी बात पर बल दिया गया है कि अपेक्षा विशेषसेनय-दृष्टिसे सभी सिद्धान्त सत्य हो सकते हैं। किन्तु वे ही सिद्धान्त उस दशामें असत्य रूप हो जायंगे; जबकि उनका निरुपण एकांन्त रूपसे एक ही दृष्टिसे किया जायगा।

न्याय-ग्रंथोंमें वर्णित कुछ मुख्य मुख्यवादोंके नाम इस प्रकार हैं:—सामान्यविशेषवाद, ईश्वरकर्तृत्ववाद आगमवाद, नित्यानित्यवाद, आत्मवाद, मुक्तिवाद, शून्यवाद, अद्वैतवाद, अपोहवाद, सर्वज्ञवाद, अवयव-अवयविवाद, स्त्रीमुक्तिवाद, कवलाहारवाद, शब्दवाद, वेदादि अपौरुषेयवाद, क्षणिकवाद, प्रकृतिपुरुषवाद, जडवाद अर्थात् अनात्मवाद, नयवाद, प्रमाणवाद, अनुमानवाद और स्याद्वाद इत्यादि इत्यादि।

ज्यों ज्यों दार्शनिक-संघर्ष बढ़ता गया त्यों त्यों विषयमें गंभीरता आती गई। तर्कोंका जाल विस्तृत होता गया। शब्दाडम्बर भी बढ़ता गया। भाषा सौव और पद लालित्यकी भी वृद्धि होती गई। अर्थ गांभीर्य भी विषय-स्फुटता एवं विषय-प्रौढ़ताके साथ साथ विकासको प्राप्त होता गया। अनेक-स्थलों पर लम्बे लम्बे समास-युक्त वाक्योंकी रचनासे भाषाकी दुरुहता भी बढ़ती गई। कहीं कहीं प्रसाद-गुण-युक्त भाषाका निर्मल स्तोत्र भी कलकल नादसे प्रवाहमय हो चला। यत्रतत्र सुन्दर और प्रांजल भाषाबद्ध गद्य प्रवाहमें स्थान स्थान पर भावपूर्ण पद्योंका समावेश किया जाकर विषयकी रोचकता दुगुनी हो चली। इस प्रकार न्याय-साहित्यको सर्वाङ्गीण सुन्दर और परिपूर्ण करनेके लिये प्रत्येक जैन न्यायाचार्यने हार्दिक महान् परिश्रमसाध्य प्रयास किया है और इसलिये वे अपने पुनीत कृत संकलपमें पूरी तरहसे और पूरे यशके साथ सफल मनोरथ हुए हैं। यही कारण है कि जैन-न्यायाचार्योंकी दिगन्त व्यापिनी, सौम्य और उज्जवल कीर्तिका सुमधुर प्रकाश सम्पूर्ण विश्वके दार्शनिक क्षेत्रोंसे मूर्तिमान् होकर पूर्ण प्रतिभाके साथ पूरी तरहसे प्रकाशित हो रहा है।

हम इन आदरणीय आचार्योंकी सार्वदेशिक प्रतिभा से समुत्पन्न, गुणगारिमासे ओत प्रोत उज्जवल कृतियोंको देख कर यह निस्संकोचरूपसे कह सकते हैं कि इन की असाधारण अमर और अमूल्य कृतियोंने जैन-साहित्यकी ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय-साहित्यकी सौभाग्य श्रीको अलंकृत किया है और वे अब भी कर रही हैं।

गोत्र-विचार

[अर्सा हुआ, जब मैं 'जैन हितैषी' पत्रका सम्पादन करता था, तब मैंने 'गोत्र विचार' नामका एक लेख लिखकर उसे १४वें वर्षके 'जैन हितैषी' के अंक नं० २-३ में प्रकाशित किया था। आज कल जब कि गोत्र-कर्माश्रित ऊँच-नीचताकी चर्चा जोरों पर है और गोम्मटसारादिके गोत्र लक्षणोंको सदोष बतलाया जा रहा है ❀ तब उक्त लेख बहुत कुछ उपयोगी होगा और पाठकोंको अपना ठीक विचार बनानेमें मदद करेगा, ऐसा समझकर, आज उसे कुछ संशोधनादिके साथ पाठकोंके सामने रक्खा जाता है 'सम्पादक'

गोत्र—विचार

सन्तान क्रमसे चले आये जीवोंके आचरण विशेषका नाम 'गोत्र' है। वह आचरण ऊँचा और नीचा ऐसा दो प्रकारका होनेसे गोत्रके भी सिर्फ दो भेद हैं—एक 'उच्च-गोत्र' और दूसरा 'नीच गोत्र' ऐसा गोम्मटसारमें श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ति द्वारा जैन सिद्धान्त बतलाया गया है। जैन सिद्धान्तमें अष्टकर्मोंके अन्तर्गत 'गोत्र' नामका एक पृथक् कर्म माना गया है, उसीका यह उक्त आचार्य प्रतिपादित लक्षण अथवा स्वरूप है। परन्तु जैनियोंमें आजकल गोत्र विषयक जिस प्रकारका व्यवहार पाया जाता है वह इस सिद्धांत प्रतिपादित गोत्र-कथनसे बहुत कुछ विलक्षण मालूम होता है। जैनियोंके गोत्रोंकी संख्या भी सैंकड़ों पर पहुँची हुई है। उनकी ८४ जातियोंमें प्रायः सभी जातियाँ कुछ न कुछ संख्या प्रमाण गोत्रोंको लिये हुये हैं। परन्तु उन सब गोत्रोंमें 'उच्च' और 'नीच' नामके कोई गोत्र नहीं हैं; और न किसी गोत्रके भाई ऊँच अथवा नीच समझे जाते हैं। अनेक गोत्र केवल ऋषियोंके नाम पर उनका उपदेश माननेके कारण, अनेक गोत्र केवल नगर-ग्रामादिकोंके नाम पर उनमें निवास करनेके कारण और बहुतसे गोत्र केवल व्यापार पेशा अथवा शिल्पकर्मके नामों पर उनको कुछ समय तक करते रहनेके कारण पड़े हैं। और भी अनेक कारणोंसे कुछ गोत्रोंका नामकरण हुआ जान पड़ता है, और इन सब गोत्रोंकी वह सब स्थिति बदल जानेपर भी अभी तक उनके वही नाम चले जाते हैं—समान आचरण होते हुए भी जैनियोंके गोत्रोंमें परस्पर विभिन्नता पाई जाती है। अतः जैनियोंके लिये गोत्र सम्बन्धी प्रश्न एक बड़ा ही जटिल प्रश्न है और इसलिये उसपर विचार चलने की जरूरत है। अर्सा हुआ 'सत्योदय' में 'शूद्र-मुक्ति' शीर्षक एक लेख निकला था, जो बादमें पुस्तकाकारमें भी छपकर प्रकाशित हो चुका है। उसमें गोम्मटसार-प्रतिपादित गोत्र कर्मके स्वरूप पर कुछ विशेष विचार प्रकट किये गये हैं। उन विचारोंको—लेखके केवल उतने ही अंशको—पाठकोंके विचारार्थ यहाँ उद्धृत किया जाता है। आशा है विज्ञ पाठक एक विद्वान्के इन विचारोंपर सविशेष रूपसे विचार करनेकी कृपा करेंगे और यदि हो सके तो अपने विशेष वचारोंसे सूचित करनेको भी उदारता दिखलायेंगे:—

❀ देखो, 'अनेकान्त' की द्वितीय वर्षकी फाइल, और उसमें भी 'गोत्र लक्षणोंकी सदोषता' नामक लेख, जो पृष्ठ ६८० पर मुद्रित हुआ है।

गोमट्टसारमें 'गोत्रकर्म' के कार्य दर्शनके लिये निम्न लिखित गाथा है:—

संताणकमेणागय-जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।
उच्चं णीचं चरणं उच्च णीचं हवे गोदं ॥
—कर्मकाण्ड १३ ।

सन्तानक्रमेणागत जीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा ।
उच्चं नीचं चरणं उच्चैर्नीचैर्भवेत् गोत्रम् ॥१३॥

अर्थ—सन्तान क्रम अर्थात् कुलकी परिपाटी-के क्रमसे चला आया जो जीवका आचरण उसकी 'गोत्र' संज्ञा है। उस कुल परम्परामें ऊँचा आच-रण हो तो उसे 'उच्च गोत्र' कहते हैं, जो नीचा आचरण हो तो वह 'नीच गोत्र' कहा जाता है।

गोत्रके इस लक्षण पर ग़ौर करते हैं तो यह लक्षण सदोष मालूम होता है, और ऐसा प्रकट होता है कि कर्मभूमिके मनुष्योंकी विशेष व्यवस्था पर लक्ष्य रखकर सामाजिक व्यवहार दृष्टिसे इस-की रचना हुई है। गोत्र कर्म अष्टमूल प्रकृतियोंमें से है और इसका उदय चतुर्गतिके जीवोंमें कहा है। नारकी और तिर्यञ्चोंके नीच गोत्रकी, देवोंके उच्च गोत्रकी और मनुष्योंके उच्च और नीच दोनों गोत्रोंकी सम्भावना सिद्धान्तमें कही है। देव व नारकीका उपपाद जन्म होता है; वे किसीकी सन्तान नहीं होते और न कोई उनका नियत आचरण है। गाथोक्त गोत्रका लक्षण इन दोनों गतियोंमें किसी तरह भी लागू नहीं होता। इसी तरह एकेन्द्रियादि सम्मूर्छन जीवोंमें भी यह लक्षण व्यापक नहीं। इसके अलावा 'आचरण' शब्द भी मनुष्यों ही के व्यवहारका अर्थवाची है और मनुष्यों ही की अपेक्षासे उक्त लक्षणमें उपयुक्त हुआ है। आचरणके साथ उच्चत्व और नीचत्वकी योजना भी मानवापेक्षित ही है। पाठकोंको विदित होगा कि अमीर, गरीब, दुखिया, सुखिया, नीच, ऊँच, सभ्य, असभ्य, पंडित, मूर्ख इत्यादि द्वन्द हैं और ये द्वन्द ऐसे दो परस्पर विरोधी गुणोंके द्योतक हैं जिनका अस्तित्व निरपेक्ष नहीं किन्तु अन्योन्याश्रित है। अतएव मनुष्य गतिको छोड़कर शेष तीन गतियों जो गोत्रका एक एक प्रकार माना गया है वह अपने प्रतिपक्षीके सत्वका सूचक और अभिलाषी है। यदि देवोंमें नीच गोत्रका, और नारकी तथा तिर्यञ्चोंमें उच्चगोत्रका सम्भव नहीं है तो इन गतियोंमें गोत्रका सर्वथा ही अभाव मानना पड़ेगा; क्योंकि द्वन्द गर्भित एक प्रतिपक्षी गुणका स्वतन्त्र सद्भाव किसी तरहसे भी सिद्ध नहीं होता। उक्त गतियोंमें गोत्रके दो प्रकारोंमें से एक विशेषकी नियामकता कहनेका यह अर्थ होता है कि इन गतियोंके जीव अपने२ लोक समुदायमें समानाचरणी हैं, उनमें भेद भाव नहीं है और जब भेद भाव नहीं तो उनको उच्च या नीच किसकी अपेक्षासे कहा जाय, वे खुद तो आपसमें न किसीको नीच समझते हैं न उच्च; उनमें नीच और उच्चका ख्याल होना ही असम्भव है। इसी ख्यालसे भोग-भूमियोंके भी उच्च गोत्र ही कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि गोत्रका लक्षण मनुष्योंकी व्यवहार व्यवस्थाके अनुसार बनाया गया है, और जिस जिस गतिके जीवोंको मनुष्यों ने जैसा समझा अथवा उनके व्यवहारकी जैसी कल्पना की, उसीके अनुसार उन गतियोंमें उच्च व नीच गोत्रकी सम्भावना मानी गई है। चतुर्गति के जीवोंमें बन्धोदयसत्वको प्राप्त होने वाले गोत्र कर्म तथा उसके कार्य स्वरूप गोत्रका लक्षण और

उदय जिस प्रकारसे प्रत्यक्ष ज्ञाता दृष्टा सर्वज्ञने कहा हो वह सब गाथासे प्रकट नहीं होता। इस लक्षणके मुताबिक गोत्रकर्मका उदय मनुष्यों ही में मिलेगा और अन्य गतियोंके जीवोंके आठ कर्मोंकी जगह सात ही का उदय मानना पड़ेगा।

जैन सिद्धान्तियोंमें ग त्र और गोत्र कर्मके विषयोंमें जो प्रचलित मत वह मनुष्यों ही के व्यवहारों तथा कल्पनाओंसे बना है। इसके विशेष प्रमाणमें निम्न लिखित ऊहापोहकी बातें पाठकोंके स्वयं विचारार्थ उपस्थित करते हैं—

१—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, इस प्रकारसे देवोंके चार निकाय जैन-धर्ममें कहे हैं। इन चारों प्रकारके देवोंमें इन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,आत्मरक्ष, लोकपाल अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य और किल्विषिक, ऐसे दश भेद होते हैं। इनमेंसे जो देव घोड़ा, रथ, हाथी, गंधर्व और नर्त्तकीके रूपोंको धारण करते हैं वे अनीक हैं जो हाथी, घोड़ा बाहन बनकर इन्द्रकी सेवा करते हैं वे आभियोग्य कहलाते हैं; और जो इन्द्रादिक देवोंके सन्मानादिकके अनधिकारी, इन्द्रपुरीसे बाहर रहने वाले तथा अन्यदेवोंसे दूर खड़े रहनेवाले (जैसे अस्पृश्यशूद्र) हैं वे किल्विषक देव हैं। यहाँ अपने आप यह प्रश्न होता है कि किल्विषक जातिके देवोंको अन्य प्रकारके देव अपनी अपेक्षा नीच समझते हैं कि नहीं? यदि नीच नहीं समझते तो किल्विषिकोंको अमरावतीसे बाहर दूर क्यों रहना पड़ता है और वे अस्पृश्य क्यों हैं? एवं अनीक तथा आभियोग्यके आचरण शेष सात प्रकारके देवोंकीदृष्टिमें उच्च हैं वा नीच? देवोंके दश प्रकारके भेद और उनके उक्त प्रकारके व्यवहारोंसे तो साफ़ प्रकट है कि उनमें नीच और उच्च दोनों ही प्रकारके आचरण-वाले जीव होते हैं, फिर जैन-सिद्धान्तियोंने देव-गतिमें नीचगोत्रका उदय क्यों नहीं कहा? पाठक विचारें।

२—इसमें कुछ विशेष कहनेकी ज़रूरत नहीं कि असुर, राक्षस, भूत, पिशाचादि देवोंके आचरण महान घृणित और नीच माने गये हैं और वे वैमानिक देवोंकी समानता नहीं कर सकते। यदि गोत्रके उच्चत्व नीचत्वमें जीवका आचरण मूल कारण है तो वैमानिकोंकी अपेक्षा व्यन्तरादिका गोत्र अवश्य नीच होना चाहिये। देवमात्रको उच्चगोत्री कहना जैनसिद्धान्तियोंके लक्षणसे विरुद्ध पड़ता है।

३—पशुओंमें सिंह, गज, जम्बुक, भेड़, कुक्कर आदिके आचरणोंमें प्रत्यक्ष भेद है। वीरता, साहस आदि गुणोंमें सिंहको मनुष्योंने आदर्श माना है। किसी दूसरेकी मारी हुई शिकार और उच्छिष्टको सिंह कभी नहीं खाता और न अपने वारसे पीछे रहे हुए पशु पर दुबारा आक्रमण करता है। जैनाचार्योंने १०० इन्द्रकी संख्यामें सिंहको इन्द्र कहा है, यथा—

"भवणालय चालीसा बिंतरदेवाण होंति बत्तीसा।
कप्पामर चउबीसा चन्दो सूरो णरो तिरओ।"

इसका क्या कारण है कि आचरणोंमें भेद होते हुए भी तिर्यञ्चमात्रको समानरूपसे नीचगोत्री कहा गया है?

४—नारकियोंमें ऐसे जीव भी होते हैं जिनके तीर्थंकर नाम कर्मका बन्ध होता है। क्या वे जीव भी अन्य नारकियोंकी तरह नीचाचरणी ही होते सर्व नारकी जीवोंका समान नीचाचरणी

और नीचगोत्री होना समझमें नहीं आता।

५—कुभोग-भूमिके मनुष्य नाना प्रकारकी कुत्सित आकृतियोंके होते हैं और सुभोग-भूमिकी अपेक्षा यह भी कहा जायगा कि वे कुभोगके भोगी हैं। क्या कुभोग भूमि और सुभोग-भूमिके जीवोंके आचरणोंमें फ़र्क़ नहीं होता? यदि होता है तो फिर अखिलभोग-भूमि-भव उच्चगोत्री ही क्यों कहे गये?

इन सब बातोंपर विचार करनेसे यही मालूम होता है कि गोत्रकर्मके विषयमें जैनोंका जो सिद्धान्त है वह केवल मनुष्योंका, और मनुष्योंमें भी भारतवासियोंका व्यवहार-मत है। भारतीय लोग सब प्रकारके देवी देवताओंकी उपासना करते हैं, भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, कोई भी हो सबके देवालय भारतमें मौजूद हैं, सबके स्तोत्रपाठ संस्कृत भाषामें हैं और उनके भक्त अपने अपने उपास्योंका कीर्तन करते हैं। इसलिये जैनोंने देवमात्रको उच्चगोत्री कहा है; क्योंकि वे मनुष्योंसे उच्च और शक्तिशाली एवं अनेक इष्टानिष्टके करनेमें समर्थ माने गये हैं। पशु और नारकियोंको कोई मनुष्य अपनेसे अच्छा नहीं समझता, न उनके गुणावगुणपर विचार करता है, इसलिये मनुष्योंके साधारण ख्यालके मुताबिक तिर्यञ्च और नरकगतिमें एकान्त नीचगोत्रका उदय बताया गया। यदि चतुर्गतिके जीवोंके आचरण और व्यवहारोंको दृष्टिमें रखकर गोत्रके लक्षण तथा उदय-व्यवस्थाका वर्णन होता तो उसमें 'सन्तानकमेणागय' पदकी योजना कभी नहीं होती, और न देव, नारकी तथा तिर्यञ्चगतिमें एकान्तरूपसे एक ही प्रकारके गोत्रका उदय कहा जाता।

गोत्रके लक्षणकी उपर्युक्त आलोचना करके हमने यह दिखला दिया है कि यह लक्षण मनुष्योंकी व्यवहार-स्थितिके अनुसार बनाया गया है। इस लक्षणसे निम्नलिखित बातें और निकलती हैं:—

(१) जीवका वही आचरणगोत्र कहा जायगा जो कुल परिपाटीसे चला आता हो, अर्थात्—जो आचरण कुलकी परिपाटीके मुआफ़िक़ न होगा उसकी गोत्रसंज्ञा नहीं है और वह गोत्रकर्म्मके उदयसे नहीं किन्तु किसी दूसरे ही कर्मके उदयसे माना जायगा।

(२) हरएक आचरणके लिये कुलविशेषका नियत होना ज़रूरी है और हरएक कुलके लिये किसी विशेष आचरणका।

परन्तु, जैनधर्ममें मानव समाजके विकासका जो वर्णन है वह कुछ और ही बात कहता है; उसको यदि सही मानते हैं तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भरतक्षेत्रमें एक समय ऐसा था जब मनुष्योंमें न तो कोई कुल थे और न उनकी परिपाटीके कोई आचरण थे, इसलिये उस समयके जीवोंके गोत्रकर्म्मका उदय भी नहीं था। वर्तमान अवसर्पिणीके प्राथमिक तीन आरोंमें भोगभूमिकी रचना थी; भोग-भूमियोंमें कुल नहीं होते, कुलकरोंका जन्म तीसरे कालके आख़ीरमें होता है। इस प्रकार कुलोंके अभावमें भोग-भूमियोंके आचरणों की गोत्रसंज्ञा नहीं कही जायगी। यदि ऐसा कहा जाय कि समस्त भोग-भूमियोंका एक ही कुल था और उनके आचरण समान थे इसलिये भोग-भूमियोंके गोत्रका सद्भाव था, तो आगे कुलकरों, तीसरे कालके अन्तके भोग-भूमियों तथा कर्म्म-

भूमिके आदिके मनुष्योंमें गोत्रका अभाव स्वयमेव सिद्ध होता है; क्योंकि इनके आचरण इनके पूर्वजोंसे सर्वथा भिन्न और विरुद्ध थे । इसको हम नीचे स्पष्ट करते हैं—

भोग भूमिया मनुष्य न खेती करते थे, न मकान बनाते थे, और न भोजन-वस्तु पकाते थे; वे अपनी सब आवश्यकतायें कल्पवृक्षोंसे पूरी करते थे । इसलिये उनमें असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, सेवा और शिल्पके कर्म व्यापार भी नहीं थे। उनको आपसमें किसीसे कुछ सरोकार नहीं था, अपने अपने युगलके साथ अपनी कल्पतरू-वाटिकामें सुखभोग करते थे । अतएव न कोई उनका समाज था और न कोई सामाजिक बन्धन । उनमें विवाह-संस्कार नहीं होता था; एक ही माताके उदरसे नर-मादाका युगल उत्पन्न होता था, जब यौवनवन्त होते थे तब दोनों बहिन और भाई स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध कर लेते थे । युगल पैदा होते ही उनके माता-पिताका देहान्त हो जाता था । इस प्रकार युगल मनुष्योंकी समान जीवन-स्थिति उस समय तक जारी रही जब तक कि कल्पवृक्षोंकी कमी न हुई । तीसरे आरेके अखीरमें कल्पवृक्षोंकी न्यूनतासे लोगोंने अपने अपने वृक्षोंका ममत्व करलिया और कई युगल वृक्षोंके लिये आपसमें क्लेश करने लगे । तत्पश्चात् परस्परके झगड़े निपटानेके लिये उन युगलियोंने अपनेमेंसे एक युगलको न्यायाधीश बनाया जो पहिला कुलकर हुआ और उसीके वंशज आगेको न्यायाधीश तथा दण्डनीतिविधायक होते रहे । इन्हीं कुलकरोंकी सन्तान श्रीऋषभदेव तीर्थंकर हुए जिन्होंने षट्कर्म्मकी शिक्षा दी; उनके उपदेशसे प्रथम पाँच कारीगर बनेः--१ कुम्भकार, २ लोहार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुननेवाले, ५ नापित अर्थात् नाई । ऋषभदेवने ही विवाहविधि चलाई और सगे बहिन भाईमें स्त्री-भर्तारका सम्बन्ध होना बन्द किया ।

इस कथनके मुआफिक़ जिस जिस भोगभूमियाने अपनी सहोदराको छोड़कर दूसरी स्त्रीसे विवाह किया, अथवा ऋषभदेवजीकी शिक्षा पाकर कुम्हार, लोहार आदिके कामको किया, उसका आचरण उसके माता पिताके आचरणोंसे बिलकुल ही विपरीत और निराला था; अर्थात् उसका आचरण अपने कुलकी परिपाटीके अनुसार नहीं था, इसलिये वह गोत्रकर्म्मके उदयसे नहीं किन्तु किसी अन्य ही कर्म्मोदयका फल था । अतएव कर्म्मभूमिकी आदिमें जो मनुष्योंके आचरण थे उनकी 'गोत्र' संज्ञा नहीं कही जा सकती और उस समयके सब लोग गोत्रकर्म्मोदय रहित थे । आठ कर्म्मोंकी जगह उनके सात ही का उदय था । गोत्रकर्म्मका उदय उनकी सन्तानके माना जायगा जिन्होंने अपने आचरण माता पितासे प्राप्त किये और उन्हींका पालन किया। यदि उस समय किसी नाईके लड़कने खेतीका काम किया और नापितके कार्यको न सीखा तो उसका भी आचरण 'सन्तानक्रमागत' न होनेसे गोत्रसंज्ञक न होगा, उसके भी गोत्रकर्म्माभाव ही कहा जायगा । ऐसे सन्तानकर्म्मरहित आचरणोंके लिये कर्म्मतत्त्व-ज्ञानमें कौनसा विशेष कर्म्म है सो ज्ञानी पाठक खुद विचारें; अष्टकर्म्मके उपरान्त तो कोई कर्म्म नहीं कहा गया और इन मूलोत्तर प्रकृतियोंको इनके लक्षणानुसार उक्त सन्तान-क्रम रहित आचरणोंके कारण कह सकते नहीं ।

'सन्तानक्रमागत' पद पर एक शंका यह और होती है कि जिस भोग-भूमियोंकी सन्तानने ऋषभदेवजी की शिक्षानुसार अपने पूर्वजोंके आचरणको छोड़कर नवीन आचरण ग्रहण कर लिये, उसके पुत्रका आचरण पिताके अनुकूल होने पर 'सन्तान क्रमागत' कहा जायगा कि नहीं; अर्थात् एक ही पीढ़ीके आचरणको 'सन्तानक्रमागत' कहेंगे या नहीं; मूलतः प्रश्न यह है कि कितनी पीढ़ीका आचरण सन्तान क्रमागत कहा जा सकता है? इसका ब्योरा किसी ग्रन्थोंमें देखनेमें नहीं आया।

अब ज़रा आचरणकी उच्चता नीचता पर विचार कीजिये। 'आचरण' शब्दसे असलियतमें आचार्योंका क्या क्या अभिप्राय है सो साफ़ साफ़ कहीं नहीं खोला गया। यदि 'आचरण' शब्दसे हिंसा, झूठ, चोरी, सप्त व्यसनआदिमें प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिसे मतलब है तब तो गोत्रके उक्त लक्षणानुसार ऐसा मानना पड़ेगा कि दो तरहके कुल यानी वंशक्रम होते हैं, एक वे जिनमें हिंसादि आचरण वंश परम्परासे नियतरूपसे कभी हुए ही नहीं, अतएव उनमें उत्पन्न हुए जीव उच्च गोत्री कहलाते हैं; दूसरे वे कुल जिनमें हिंसादि आचरण नियत रूपसे परम्परासे होते आये हैं, इसलिये उनमें जन्म लेने वाले जीव नीच गोत्री होते हैं।

चतुर्गतिके जीवोंका विचार न करें तो ऐसे उच्चाचरणी नीचाचरणी नियत कुलोंका कर्मभूमिके आदिमें सर्वथा अभाव था। भोग-भूमियोंमेंसे तो ऐसे नियत कुल थे ही नहीं; अतः नियतकुलोंके अभाव में युगादिमें सब मनुष्य गोत्र तथा गोत्र कर्म रहित थे। जैन ग्रन्थोंमें इस बातका ब्योरा कहीं भी नहीं है कि अमुक अमुक कुल तो हमेशाके लिये उच्चाचरणी हैं और अमुक अमुक नीचाचरणी। तदुपरान्त युगान्तरों तक उन कुलोंमें निरन्तर एक ही प्रकारका आचरण रहे इसकी गारंटी क्या? किसी भी कुलमें एक ही तरहका आचरण निरन्तर बना रहेगा ऐसा मानना प्रकृति और कर्म सिद्धान्तके प्रतिकूल है, प्रत्यक्षसे बाध्य है। किसी जीवके आचरण उसके पिता या पूर्वजोंके अनुसार अवश्यमेव ही हों, ऐसा मानना एकान्त हठ है।

यदि आचार्योंका यह अभिप्राय हो कि उक्त हिंसादि आचरणोंमें प्रवृत्ति और निवृत्ति जीविकाके षट्कर्म तथा पेशोंसे निर्योजित है; कई पेशे और कर्म तो ऐसे हैं जिनके करनेवाले नीचाचरणी नहीं होते और कोई ऐसे हैं जिनको करनेसे जीव नीचाचरणी हो ही जाता है अथवा नीचाचरणी ही उस पेशेको करता है उच्चाचरणी नहीं। प्रयोजन यह हुआ कि कई पेशोंके साथ उच्चाचरणका अविनाभावी सम्बन्ध है और कतिपयके साथ नीचाचरणका। इसमें कई अनिवार्य शंकाएँ पैदा होतीहैं। चतुर्गतिके जीवोंकी अपेक्षा तो यह सर्वथा असम्भव है। मनुष्योंकी अपेक्षा लीजिये—

(क) भोग-भूमियोंके कोई पेशे वा जीविका कर्म नहीं थे अतः वे सब नीचाचरणी तथा गोत्रकर्म रहित कहे जायेंगे। यह प्रचलित गोत्रोदय-मतसे विरुद्ध पड़ता है।

(ख) षट्कर्म और पेशोंका उपदेश आदि तीर्थंकरने दिया था और उन्होंने ही कारीगरी तथा शिल्पके कार्य सिखाये थे, अन्नादिका अग्निमें पकाना भी उन्होंने ही सिखाया। वे अवधिज्ञानी और मोक्षमार्गके आदि विधाता थे; यदि उच्चाचरणी और नीचाचरणी दोप्रकारके पेशे वास्तवमें होते तो

वे नीचाचरणके पेशोंको कभी नहीं सिखाते और न किसीको उनके व्यापार का आदेश करते, जान बूझकर वे जीवोंको पापमें न डालते, प्रत्युत सबकी ही उच्चाचरणी पेशोंकी शिक्षा देते । जीविका कर्म और पेशोंके साथ उच्चाचरण और नीचाचरण के सम्बन्धकी योजनासे भगवान् ऋषभदेव पर बड़ा भारी दूषण आता है । इससे यही कहना पड़ेगा कि या तो उच्चाचरण और नीचाचरणका सम्बन्ध पेशोंमें है नहीं, और यदि है तो षट्कर्म और भिन्न भिन्न शिल्पके कार्योंकी शिक्षा ऋषभदेव जी ने नहीं दी किन्तु प्रकृतिका विकासके नियमानुसार शनैः शनैः जनताकी जरूरतोंसे कभी कुछ और कभी कुछ, ऐसे नये नये आविष्कार होते रहे जैसे आजकल होते हैं । ऋषभदेवजीका चलाया हुआ कोई भी पेशा नीचाचरणका नहीं हो सकता, तदनुसार कुम्हार, जुलाहा, लोहार, नाई सब उच्च गोत्री हैं, पेशेकी अपेक्षा ये लोग नीचाचरणी नहीं, अथवा ये कहिये कि कुम्हार आदिके पेशे ऋषभदेवजी ने नीचाचरण या नीचाचरणीके कारण नहीं समझे और न ऐसा किसीको प्रकट किया । तदनुसार जीविका कर्मकी अपेक्षासे ऋषभ देवजीकी दृष्टिमें न कोई उच्च गोत्र था, न नीच। पाठक विचार करें कि ऐसी अवस्थामें उच्च और नीच आचरणोंके नियत कुलोंका सर्वथा अभाव है कि नहीं; फिर गोत्र और गोत्रकर्मकी क्या बात रही ?

(ग) जैनधर्ममें प्रथमानुयोगके अनुसार जिन कुलोंमें क्षात्रकर्म होता है वे उच्चगोत्र कहे जायंगे । इसका यह अभिप्राय होता है कि जिन कुलोंमें परिपाटीसे क्षात्र-कर्म होता है उनमें उत्पन्न होने वाले जीवोंके आचरण नियमतः उच्च ही होने चाहियें, तभी आचरण और जीविका-कर्ममें अविनाभावी सम्बन्ध माना जा सकता है । परन्तु कथा पुराणोंमें इसके विपरीत हजारों उदाहरण मिलते हैं । रावण क्षत्रियकुलोत्पन्न तीन खण्डका राजा था, उसने सीता परस्त्रीका हरण किया जिसके कारण लाखों जीवोंका रणमें खून हुआ । युधिष्ठिरादि पाण्डव और कौरव क्षत्रियोद्भव थे, उन्होंने जूआ खेला और व्यसनको यहां तक निभाया कि द्रौपदी स्त्रीको भी दावमें लगाकर हार बैठे। पाठक, जरा विचारिये कि क्या ये आचरण उच्च थे । हमने ये उदाहरण दिग्दर्शनमात्रको लिख दिये हैं, वरना (अन्यथा) पुराणोंमें अगणित मिसालें (उदाहरण) मौजूद हैं जिनसे विदित होगा कि क्षत्रियोंमें ही अधिकतर नीचाचरणी हुये हैं। ऐसी अवस्था में पेशोंके साथ आचरणोंका स्थिर सम्बन्ध कैसे माना जा सकता है ?

उपर्युक्त बातोंसे यह साफ होजाता है कि लोकमें न तो ऐसे कुल ही हैं जिनके लिये यह कहा जा सके कि उनमें उच्च या नीचाचरण हमेशाके लिये परिपाटीसे चला आता है और न जीविका कर्म या पेशोंके कुलोंसे आचरणोंका अविनाभावी सम्बन्ध सिद्ध होता है ।

अतः गोम्मटसारमें जो गोत्रका लक्षण है और जैन सिद्धान्तियोंने गोत्रकर्मोदय-व्यवस्था जैसी मानी है, ये सब प्रकृति-विकासके विरुद्ध हैं; ये सार्वकालिक और चतुर्गतिके जीवोंपर दृष्टि रखकर नहीं बनाये गये, किन्तु भारतवासियोंके व्यवहार और खयालोंके अनुसार इनकी कल्पना हुई है । अमुक प्रकारके कुल जैसे ब्राह्मणादि, नियमसे

उच्चारणी ही होते आये हैं और होते रहेंगे, इनमें उत्पन्न हुए जीवोंको उच्च ही मानना एवं इनसे इतर कुल जैसे कुंभकार आदि शिल्पकार नापित प्रभृति सेवा-कर्म्मी नीचाचरणी हैं, इनको सदा सर्वदाके लिये नीचही मानना, नीचता उच्चता जन्मसे है, गुण, स्वभावसे नहीं; एक कुल जाति का कर्म दूसरे कुल-जातिवाला न करे, इत्यादि धारणायें भारतमें ही हजारों वर्षोंसे अचलरूपसे चली आरही हैं। इन्हीं वंश-परम्परागत धारणाओं और व्यवहारोंके मुताबिक जैनाचार्योंने गोत्र-कर्म्मका लक्षण रचा है।

गोम्मटसारके अलावा सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक आदि तत्त्वार्थसूत्रकी टीकाओंमें जो उच्च और नीच गोत्रका लक्षण लिखा है उससे भी यही निस्सन्देह प्रतीत होता है कि गोत्र-कर्मकी योजना जैन विद्वानोंने कर्म-सिद्धांतमें भारतीय मनुष्यों ही के विचारसे की है; चतुर्गतिके जीवोंमें या तो गोत्र-कर्म और गोत्रका सद्भाव नहीं और है तो वह क्या है, उसका लक्षण इन प्रचलित शास्त्र मतोंकी व्यवहार-रूढ़िसे नहीं मिल सकता। टीकाकार आचार्य सब यह लिखते हैं कि "जिसके उदयसे लोक पूज्य इक्ष्वाकु आदि उच्च कुलोंमें जन्म हो, उसे 'उच्च गोत्र कर्म' कहते हैं, और जिसके उदय से निन्द्य दरिद्री अप्रसिद्ध दुःखोंसे आकुलित चाण्डाल आदिके कुलमें जन्म हो, उसे नीच गोत्र कर्म' कहते हैं। पाठक देखलें कि ये लक्षण चतुर्गतिके जीवोंमें कैसे व्यापक हो सकते हैं?

परन्तु, पाठकजन, गोत्र कर्म असलियतमें है कुछ जरूर, उसके अस्तित्वसे हम इन्कार नहीं कर सकते, चाहे लोक व्यवहारी जैनाचार्योंके निर्दिष्ट लक्षणमें हम उसका यथावत् स्वरूप नहीं पाते और अनेक अनिवार्य शंकाएँ होती हैं तथापि प्रकृति-विकासमें उसकी खोज करनेसे हम गोत्र और गोत्र कर्मके शुद्ध लक्षण तक पहुँच सकते हैं।

वीरशासनांक पर कुछ सम्मतियां

(१) प्रोफेसर ए० एन० उपाध्याय, एम. ए. डी. लिट कोल्हापुर—

"I am in due receipt of the (वीर-शासन) Number of the 'Anekant'. I feel no doubt that your 'Anekant' occupies a prominent position among Hindi Journals. A student of Jaina Literature is sure to find a good deal of valuable material in its pages; and he has to keep it always at his elbow for repeated reference."

अर्थात्-'अनेकान्त' का 'वीर शासनांक' मिला। मुझे इसमें ज़राभी सन्देह नहीं कि आपका 'अनेकान्त' हिंदी पत्रोंमें प्रधान स्थान रखता है। यह सुनिश्चित् है कि जैन साहित्यका विद्यार्थी इसके पृष्ठोंमें बहुतसी बहु-मूल्य सामग्रीको मालूम करे और इसे हमेशा अपने पास बार बार उल्लेखके लिये रक्खे।

(२) न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमारजी शास्त्री, न्यायाध्यापक स्याद्वाद महाविद्यालय काशी—

" 'विशेषाङ्क' देखा, हृदय प्रसन्न होगया। लेखोंका चयन आदि बहुत सुन्दर हुआ है। बा० सूरजभानजी तो सचमुच प्रचंड रूढ़ि विघातक युवक हैं। वे रूढ़ियों के मर्मस्थानोंको खोज २ उन पर ही प्रहार करते हैं। मैं पत्रकी समुन्नतिकी बराबर शुभ भावनाएँ भाता हूँ।"

बुद्धिहत्याका कारख़ाना

अवतारवाद, भाग्यवाद और कलिकल्पना

['गृहस्थ' नामका एक सचित्र मासिकपत्र हालमें रामघाट बनारससे निकलना प्रारम्भ हुआ है, जिसके सम्पादक हैं श्री गोविन्द शास्त्री दुगवेकर और संचालक हैं श्रीकृष्ण बलवन्त पावगी। पत्र अच्छा होनहार, पाठ्य सामग्रीसे परिपूर्ण, उदार विचारका और निर्भीक जान पड़ता है। मूल्य भी अधिक नहीं— केवल १॥) रु० वार्षिक है। इसमें एक लेखमाला "झब्बूशाही" शीर्षकके साथ निकल रही है, जिसका पाँचवाँ प्रकरण है 'झब्बूशाहीका बुद्धिहत्याका कारखाना'। इस लेखमें विद्वान लेखकने हिन्दुओंके अवतारवाद, भाग्यवाद और कलिकालवाद पर अच्छा प्रकाश डाला है। लेख बड़ा उपयोगी तथा पढ़ने और विचारनेके योग्य है। अतः उसे अनेकान्तके पाठकोंके लिये नीचे उद्धृत किया जाता है।

—सम्पादक]

मनुष्य-जीवनमें बुद्धिका स्थान बहुत ऊँचा है। बुद्धिकी सहायतासे मनुष्य क्या नहीं कर सकता। बुद्धिके प्रभावसे वह असम्भवको भी सम्भव बना देता है। आर्य चाणक्यने कहा है:—

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।
नन्दोन्मूलन-दृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मागान्मम॥

मेरी बुद्धिकी शक्ति और महिमा नन्दवंशको जड़से उखाड़ देनेमें प्रकट हो चुकी है। मैं अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें बुद्धिको सैकड़ों सेनाओंसे बढ़कर समझता हूँ। मेरा सर्वस्व भले ही चला जाय, किन्तु केवल मेरी बुद्धि मेरा साथ न छोड़े। महाभारतमें लिखा है:—

शस्त्रैर्हतास्तु रिपवो न हता भवन्ति।
प्रज्ञाहतास्तु नितरां सुहता भवन्ति॥

शस्त्रोंके द्वारा काट डालनेसे ही शत्रुओंका संहार नहीं होता, किन्तु जब उनकी बुद्धि मार डाली जाती है,तभी उनका यथार्थ नाश होता है। गीतानेभी बुद्धिनाशको ही मनुष्यके नाशका कारण माना है। राजनीतिज्ञ चतुर पुरुष अपने देश या राष्ट्रकी भलाईके लिये शत्रुओंकी बुद्धिका नाश करते हैं, परन्तु अधर्म और अनाचारोंके प्रवर्तक झब्बूलोग अपने स्वार्थके लिये अनन्त स्त्री पुरुषोंकी बुद्धिहत्या कर डालते हैं।

यह हम कह आये हैं कि, मनुष्य-जातिका ज्ञान अभी अपूर्ण है और अपूर्ण ज्ञान कदापि भ्रान्ति-रहित नहीं होता। मानवी बुद्धिकी इसी दुर्बलतासे लाभ उठाकर संसारमें अनेक लफंगे झब्बू निर्माण हो गये हैं। मनुष्योंकी आवश्यकताएँ बहुत होती हैं और उनकी पूर्तिके लिये वे ऐसे साधन खोजा करते हैं कि परिश्रम कुछ भी न करना पड़े या बहुत कम करना पड़े और फल पूरा या आवश्यकतासे अधिक मिल जाय। जब उनकी बुद्धि चकरा जाती है और उन्हें कोई स्पष्ट मार्ग नहीं सूझ पड़ता, तब वे उन झब्बुओंके चक्करमें फँस जाते हैं, जो सर्वज्ञ या लोकोत्तर ज्ञानी होनेका दावा करते हों। ऐसे भ्रान्त, भले और भोले मनुष्योंकी बुद्धि को वे अपने चलाये बुद्धि-हत्याके कारख़ानेमें इस प्रकार पीस डालते हैं कि संसारमें उनका कहीं ठिकाना ही रह जाता।

सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल भावुकोंको झब्बू लोग समझा देते हैं कि ईश्वर किसी अज्ञात जगतसे इस धरा धाममें अवतीर्ण होकर मानवी शक्तिसे बाहरकी अनहोनी बातें कर डालता है। उन्हें वे यह भी विश्वास दिलाते हैं, कि हमें ईश्वरका दर्शन हो गया है और जिन्हें उसका दर्शन करना हो, वे हमारे पास चले आवें हम भी ईश्वरके ही एक अवतार हैं और यदि चाहें, तो मनुष्योंका भला-बुरा सब कुछ कर सकते हैं।

वास्तवमें यदि किसीको ईश्वरका साक्षात्कार हो गया होता और दूसरेको भी ईश्वरका दर्शन करानेकी किसीमें शक्ति होती, तो रेडियो यन्त्रकी तरह एक ही ईश्वर घर-घर देख पड़ता। परन्तु ईश्वरके सत्यरूपके सम्बन्धमें ही अभी एकमत नहीं है, उसका दर्शन कौन किसको करावे? किसीका ईश्वर सात आसमानके ऊपर बैठा है, तो किसीका सात समुद्रोंके पार क्षीरसागरमें शेषनागपर सोया है। किसीका ईश्वर सृष्टिके अन्तकी प्रतीक्षा करता हुआ न्यायदानके लिये उत्सुक हो रहा है, तो किसीका सप्ताहमें एक दिन विश्राम करता है। किसीका ईश्वर सगुण है, तो किसीका निर्गुण। किसीका ईश्वर क्रोधी है, तो किसीका शान्त। किसीका शून्य है, तो किसीका क्रियाशील। सच्ची बात तो यह है कि, अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार मनुष्योंने ईश्वरकी कल्पना करली है। तर्क और बुद्धिको जहांतक स्थान मिला, मनुष्य बराबर आगे बढ़ते गये; परन्तु जब दोनोंकी गति कुण्ठित हो गई, तब उन्होंने किसी एक ईश्वरको मान लिया और उसीपर निर्भर रहकर कर्म करनेसे हाथ पैर बटोर लिये।

हिन्दुओंकी भोली भावना है कि, संसारमें जितने कुछ बड़े बड़े काम होते हैं, अवतारी पुरुष ही करते हैं। भागवतमें तो यहां तक लिखा है कि नर-नारायणकी जोड़ी कालके प्रारम्भ होते ही हिमालयकी गुहामें जाकर तपस्या कर रही है। कलिके अन्ततक हमें दुःख ही-दुःख भोगना है। इसलिये केवल रामनाम जपते हुए लाखों वर्ष दुःख सहते रहो। कलिका अन्त होते ही उक्त ऋषि अवतीर्ण होंगे और हमारे सब दुःख दूर कर देंगे। बौद्धिक दासताका इससे बढ़कर यहां प्रमाण मिल सकता है? इसी भावनासे हम राम, कृष्ण, व्यास, बाल्मीकि, शंकराचार्य, रामदास, तुलसीदास आदिकी कौन कहे, तिलक गांधी तकको अवतार मानने लगे हैं और अपनी बुद्धिका दिवाला खोल बैठे हैं। हम यह नहीं समझते कि, प्रत्येक जीव ईश्वरका अंश है और 'नर करनी करे, तो नारायण भी हो सकता है।" आश्चर्यकी बात तो यह है कि, जिन्हें हम अवतार मानते हैं, वे क्या कहते और क्या करते हैं, उस ओर ध्यान भी नहीं देते; किन्तु उनके निमित्तसे जो उत्सव करते हैं, उनमें तालियां पीटकर व्याख्यान झाड़ते या मेवा मिश्रीका भोग लगाकर उदरदेवको सन्तुष्ट करते हैं जहां तक देवताओंको मानकर और उन्हींपर जीवन कलहका सब भार सौंपकर परावलम्बी बन जाना, कैसी उपासना है?

सचमुच देखा जाय, तो हमारी इस कोरी उपासनाकी अपेक्षा पाश्चात्य साधनोंकी उपासना कहां बढ़ी चढ़ी है। हम पृथ्वी, सूर्य, वायु अग्नि आदिको देवता मानते और चन्दन फूलोंसे उनकी उपासना करते हैं, जिसका कुछ भी फल नहीं होता। पाश्चात्य साधकोंने इन्ही पंचदेवोंकी ऐसी उपासनाकी, जिससे वे उनके वशमें हो गये और नाना प्रकारसे मनुष्यजातिका उपकार करने लगे। पाणिनीने भाषाशास्त्र निर्माण किया, आर्य भट्टने गणित शास्त्रके सिद्धान्त प्रस्थापित किये, मनु याज्ञवल्क्य आदिने आचारोंका वर्गीकरण

किया। कौटिल्यने अर्थशास्त्रकी रचना की, गैलीलियोने विद्युत् शक्तिका पता लगाया, न्यूटनने गुरुत्वाकर्षणका नियम खोज निकाला, ये सब प्रकृतिके देवताओंके सच्चे उपासक थे। फिर भी मनुष्य ही थे। यदि ईश्वर को मान लिया जाय, तो वह भी स्थूल देह धारण करके ही प्राकृतिका उपभोग करता है और इस विचार-से हमें भी ईश्वर होनेका पूर्ण अधिकार है। तब हम लाखों वर्षोंतक ईश्वरके अवतार प्रतीक्षा करते हुए दुःख में क्यों पड़े रहें?

पुराणोंमें दस अवतारोंका वर्णन है। नौ अवतार होगये हैं, दसवां बाकी है। उस दसवेंको भी हम बाकी क्यों बचने दें? कलंकी अवतार घोड़े पर सवार है, हाथमें तलवार लिये है और म्लेच्छोंका संहार कर रहा है। इसी स्वरूपमें हम शिवाजी का भी चित्र देखते हैं तब क्यों न मान लें कि, शिवाजीके साथ ही सब अवतार समाप्त हो गये हैं और अब हमें अपने उत्कर्षके मार्ग पर आप ही अग्रसर होना है? अवतारवाद ऋब्बुओंने निर्माण किया है और सभी ऋब्बू अपने आपको ईश्वरके अवतार होनेकी घोषणा करते हैं। इस से उनकी तो बन आती है, किन्तु भोली-भाली जनता अकारण ठगी जाती है। अतः जब कि, हमें संसारमें सम्मानके साथ जीना है, तब मनमें दौर्बल्य उत्पन्न करनेवाले अवतारवादको भी पूर्वोक्त दो ऋषियोंके साथ हिमालयकी गहरी गुहामें बन्द कर देना नितान्त आवश्यक है। ईश्वर न कहीं जाता है, और न आता है। और वह सर्वव्यापक है, प्राणिमात्रके अन्तःकरणमें स्थित है और चैतन्यरूपसे सर्वत्र व्याप्त है। उनके आनेकी अवतरित होनेकी—बाट जोहना मूर्खता है। मनुष्यको अपना उद्धार आप ही कर लेना होगा। "उद्धरेदत्मनात्मानम्" यही गीताका उपदेश है।

ऋब्बुओंके बुद्धिहत्याके कारखानेमेंजब कोई "आंख का अन्धा गाँठका पूरा" पहुँच जाता है, तब पहले ही प्रकोष्ठ (कमरे) में उसे अवतारवादकी दीक्षा देकर दीक्षित उर्फ आत्मीय बना लिया जाया है। दीक्षा लेते ही वह अन्धश्रद्धाकी अन्धकारमयी एकान्त गुहामें प्रवेश करनेका अधिकारी बनता है। वह गुहा उस कारखानेका दूसरा प्रकोष्ठ है। उसमें लेजाकर उस साधकको भाग्यदेवका साक्षात् दर्शन कराया जाता है और सदा जपनेके लिये यह मन्त्र रटा दिया जाता है:—

"होहहि वही जो राम रचि राखा।
को कर तर्क बढ़ावहि साखा॥"

इस मन्त्रके जपते ही उसे 'नैष्कर्म्यसिद्धि' प्राप्त हो जाती है अर्थात् अपने अधःपातके लिये वह अकर्मण्य निकम्मा 'काठका उल्लू' बन जाता है। उसमें फिर यह सोचनेकी शक्तिही नहीं रहती कि, भाग्य भी प्रयत्न (कर्म) का ही एक फल है।

कर्मके तीन विभाग हैं,—सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण। इस जन्म या पूर्व जन्मोंमें जो कर्म हम कर चुके हों, वे सञ्चित हैं। उनमें से जिनका भोग आरम्भ हो गया हो, वे प्रारब्ध हैं और जो भोग रहे हैं, वे क्रियमाण हैं। परन्तु क्रियमाण प्रारब्धका ही परिणाम हैं, इसलिये लोकमान्य तिलक और वेदान्तसूत्रोंने संचितके ही प्रारब्ध और अनारब्ध ये दो भेद माने हैं। संचित में से जिनका भोग आरम्भ हो गया है, वे प्रारब्ध और जिनका भोग शेष है वे अनारब्ध हैं। निष्कामकर्म योगसे अथवा ज्ञानसे प्रारब्धका प्रभाव हटाया जासकता है और अनारब्ध दग्ध किये जा सकते हैं। क्योंकि मनुष्य प्रवाह में पड़े हुए लकड़ीके लट्ठे के समान नहीं है; किन्तु कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। उसमें इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति है। वह पशुकी तरह पराधीन नहीं, किन्तु

अपने भाग्यका आप विधाता है। उसे काल्पनिक भाग्य पर भरोसा नहीं रखना चाहिये। ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है:—

आस्ते भग आसीनस्योर्द्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः ॥चरैवेति॥

अर्थात् जो मनुष्य घरमें बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठ जाता है; जो खड़ा रहता है, उसका भाग्य खड़ा हो जाता है; जो सोया रहता है, उसका भाग्य सो जाता है और जो चलता फिरता है, उसका भाग्य भी चलने फिरने लगता है। इसलिये उद्योग करो, पुरुषार्थी बनो।

यदि ग़ज़नी, ग़ोरी, हुमायूं या अकबर भाग्य पर भरोसा रखकर बैठ रहते, तो मुसलमान ग्यारह सौ वर्षोंतक भारतका शासन न कर सकते और यदि अंग्रेज़ भाग्यदेवकी शरणमें चले जाते, तो दिल्लीपर अपना झण्डा फहरा न सकते। उद्योगियोंके घर ऋद्धि-सिद्धियें पानी भरा करती हैं। योगवासिष्ठमें वसिष्ठ श्रीरामचन्द्रसे कहते हैं:—"भाग्य तो मूर्खों और आलसियोंकी गढ़ी हुई एक काल्पनिक वस्तु है। उद्योगमें ही भाग्य निहित है। उद्योग न हो, तो भाग्यका अस्तित्व ही नहीं रहेगा। पूर्वकर्म ही प्रारब्ध है और वह प्रबल पुरुषार्थसे नष्ट किया जा सकता है। उद्योग प्रत्यक्ष है और भाग्य अनुमान है। अनुमानकी अपेक्षा प्रत्यक्षका महत्व अधिक है। उद्योगसे स्वराज्य, साम्राज्य ही क्या, इन्द्रपद भी प्राप्त हो सकता है। राह-चलता भिखारी यदि राजा हो जाय, या किसी ग़रीबकी लड़की महारानी बन जाय, तो वह उसके पूर्वकृत सत्कर्मोंका फल है। यदि यह कहा जाय कि, जो कुछ होता है, भाग्यसे ही होता है; तो भाग्यपर निर्भर रहकर आगमें कूद पड़ना, पहाड़से लुढ़क जाना, जान बूझकर विष पी लेना, बच्चोंको पढ़ने न भेजकर लण्ठ रखना क्या उचित होगा? पुरुषार्थीके लिये संसारमें असम्भव कुछ भी नहीं है। प्रयत्नवादी पुरुषके आगे भाग्य हाथ बाँधे खड़ा रहता है। प्रयत्नसे ही देवोंको अमृतकी प्राप्ति हुई। अतः हे राम! नपुंसकता उत्पन्न करनेवाले भाग्यवादको छोड़कर नवजीवन उत्पन्न करनेवाले प्रयत्नवादको अपनाओ; इसीमें तुम्हारा कल्याण है।"

समर्थ रामदासने भी कहा है:—"प्रयत्न देवता है और भाग्य दैत्य है। इसलिये प्रयत्नदेवकी उपासना करना ही श्रेयस्कर है।" सम्भव है कि, प्रयत्नरूपी देवताकी आराधना करते हुए भाग्यरूपी दैत्य वहाँ पहुँचकर विघ्न करे; इसलिये उस भाग्यरूपी दैत्यपशुको पकड़कर प्रयत्न देवके आगे उसकी बलि चढ़ा देनी चाहिये। भेड़ बकरे मारनेसे शक्ति-चामुण्डा प्रसन्न नहीं होती, किन्तु अवतारवाद, दैव—भाग्य—वाद जैसे प्रबल पशुओंको काट गिरानेसे ही वह सन्तुष्ट होकर मनुष्यजातिका कल्याण साधन करती है। जो बुद्धिमान् मनुष्य प्रयत्नदेवको सिद्धकर लेता है, वह झब्बुओंके बुद्धिहत्याके कारखानेकी अन्धश्रद्धाकी अन्धी गुहातक पहुँच ही नहीं पाता और यदि किसी कारणसे पहुँच भी जाता है, तो वे रोकटोक उससे छुटकारा भी पा जाता है।

झब्बू लोग भावुकोंको अपने कारख़ानेमें लेजाकर, उनसे भाग्यवादकी तपस्या कराकर, जब परिक्रम करलेते हैं, तब उन्हें तीसरे प्रकोष्ठकी कल्पिकल्पनाकी चरखी (मशीन) पर चढ़ा देते हैं। पहले प्रकोष्ठमें मनुष्य अन्धश्रद्ध बनता है, दूसरेमें निकम्मा—पुरुषार्थहीन—हो जाता है और तीसरेमें लत्ते या लतखोरेका रूप धारण कर लेता है। यों अच्छी तरह उसकी बुद्धिहत्या

हो जाने पर, अथवा यों कहें कि कच्चा माल पक्का बन जाने पर, वह झब्बुओंके कुचक्रके पटारेमें भर लिया जाता है और फिर व्यावहारिक संसारमें उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

बुद्धिहत्याके कारखानेकी कलिकल्पनाकी मशीन बड़ी ही भयानक है और उसका प्रभाव भी असाधारण है। उसके महात्म्यका झब्बुओंने पहलेसे ही ऐसा वर्णन कर रक्खा है कि, जिसका कोई ठिकाना नहीं। जब कलिकालका यन्त्र अपने पूरे वेगसे चलने लगेगा, तब सब वर्ण शूद्र हो जायेंगे, ब्राह्मण धर्म कर्म छोड़ देंगे, गायें दूध और भूमि अन्न नहीं देगी, मेघ यथासमय नहीं बरसेंगे, पतिव्रताएँ भ्रष्ट हो जायंगी, पुरुष स्त्री-जित,लम्पट और-पर स्त्री गामी होंगे, ब्राह्मणत्वका चिन्ह जनेऊभर रह जायगा, धर्मवक्ता और साधु ढोंगी पाखण्डी—होंगे, राजा प्रजाको पीस डालेगा, पुत्र पिता की बात नहीं मानेगा, पति पत्नीमें प्रेम नहीं रहेगा, पुत्र अपनी मातासे स्त्रीकी सेवा करावेगा, विषयसुख ही प्रधान सुख माना जायगा, कामीलोग बहन बेटीका भी विचार नहीं करेंगे, अर्थप्राप्ति ही पुरुषार्थ हो रहेगा, भाई भाई एक दूसरेकी छाती पर चढ़ेंगे। भाई-बहनों, देवरानी-जेठानियों और ननद-भौजाइयोंमें अनबन रहेगी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, वज्रपात, अग्निदाह, रोग, भूकम्प आदि उत्पात बारबार होंगे, देवों-ब्राह्मणों और साधुओंको कोई नहीं मानेगा, सब लोग पापी और अल्पायु होंगे, सभी मनुष्य अँगूठेके बराबर हो जायेंगे, धर्मका नामतक नहीं रहेगा मोक्षका विचार उठ जायगा और अधर्म बढ़कर संसार उच्छिन्न हो जायगा इत्यादि। मानों ये सब बातें अन्य युगोंमें हुई ही नहीं।

आश्चर्य तो यह है कि, कलिकालका भविष्य कथन करनेवाले लेखकने ही ब्राह्मण वृत्रका वध करनेवाले इन्द्र मातृहत्याकारी ब्राह्मण परशुराम, नारीहरणकारी ब्राह्मण रावण, कूकुरका माँस भक्षण करनेकी इच्छा करनेवाले महर्षिविश्वामित्र, शुक्राचार्यको ठगनेवाले जैनमत-प्रचारक देवगुरु बृहस्पति * प्रजापीडक नहुष और वेन, पत्नीकी सदा फटकार सुननेवाले द्रोण, स्त्रीलम्पट दशरथ, सपत्नियोंसे वैर करनेवाली केकयी, चन्द्रमासे पुत्र उत्पन्न करनेवाली गुरुपत्नी तारा, अर्थलोलुप ब्राह्मण धन्वन्तरी, कन्यापर आसक्त होनेवाले ब्रह्मा, पतोहूपर रीझनेवाले वसिष्ठ और अग्निसे गर्भ धारण करनेवाली ऋषिपत्नियों तथा एकसे अधिक पति करनेवाली और कौमार्यावस्था तथा वैधव्यावस्थामें सन्तानोत्पत्ति करनेवाली कितनीही स्त्रियोंके जीवनचरित्र लिख मारे हैं;जो उन्हींके मतानुसार कलियुगके नहीं है। उल्कापात, वज्रपात और साठ २ हज़ार वर्षोंके अवर्षणोंकी बातें तो जहाँ तहाँ लिखी मिलती हैं। उस समय पृथ्वी तो बात बातमें डोल जाती और गौ बनकर ब्रह्माके पास भागती थी। यज्ञ-प्रसंगमें मद्य मांसके लिये देवता लड़ जाते थे और सभी लोग भेड़, बकरे, सूअर, बछड़े, सांड, गाय, घोड़े, गैंडे, खच्चरतक मार मारकर खा पचा डालते थे। कलिवर्णनके लेखककी ही बात सही मान ली जाय, तो यही कहना पड़ेगा कि अन्य युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें ही सभ्यता का अधिक विकास हुआ है।

वेदाङ्ग ज्योतिषने पांच वर्षका एक युग माना है; परन्तु झब्बुओंने लाखों वर्षोंके युग बना डाले हैं। उनके हिसाबसे चार लाख बत्तीस हज़ार वर्षोंका कलियुग है। जब तक वह रहेगा तबतक उनकी वर्णित परिस्थिति ही

* इस कथनमें जैनमत-प्रचारक, यह विशेषण समझकी किसी ग़लती अथवा भूलका परिणाम जान पड़ता है; क्योंकि देवगुरु बृहस्पति जैनमतके कोई प्रचारक नहीं हुए हैं। —सम्पादक

बनी रहेगी और दिन दिन अधर्म, अनीति, अन्याय, असत्य, हिंसा, अत्याचार अनाचार आदिका बाज़ार गरम रहेगा। बेचारोंने यह भी सोचनेके कष्ट नहीं उठाये कि जब हमारे देखते हुए १०-१२ वर्षोंमें ही पूर्व-परिस्थिति बदल जाती है, तब लाखों वर्षोंतक वह एकसी कैसे बनी रह सकती है? उनकी दृष्टिमें कलिका प्रताप अनिवार्य है, वह होकर ही रहेगा। नया राज्य, नयी संस्थाएँ, नये विचार, नये सुधार, जो कुछ वे नया देखते हैं, सब कलिका प्रताप है। कोई नारी हरण करे, बलात् गोमांस खिला दे, अपमान करे, मूर्तियोंको तोड़ फोड़ दे, राज पाट छीन ले, गलेमें डोरी बाँधकर बन्दरकी तरह नाच नचावे, सब कलिकी महिमा है।

प्रश्न यह उठता है कि, कलि भारतवर्षके ही पीछे क्यों पड़ा है? विदेशोंमें वह अपना प्रभाव क्यों नहीं दिखाता? क्या खैबरघाटीके पार करने अथवा समुद्रके लाँघनेकी उसमें सामर्थ्य नहीं है या उन देशोंमें उसे कोई पूछता ही नहीं? हमारे पड़ौसी जापान, रूस तथा तुर्किस्तानने अपने यहाँ सुवर्णयुग प्रस्थापित कर दिया है और युद्धमें पराजित जर्मनी समराङ्गणमें ताल ठोककर फिर खड़ा हो गया है। इङ्गलैण्ड, अमेरिका, फ्रान्स, इटली आदि देशोंमेंकलिकी दाल नहीं गलती। कदाचित वहाँके स्वाभिमानी कर्मवीरों और उनकी जल-स्थल-नभोमण्डलमें मण्डित सुसज्जित युद्ध-सामग्रीको देखकर वह डर जाता हो। इसमे तो यही अर्थ निकलता है कि, दुर्बल राष्ट्रोंको ही कलि सताता है, सबलोंके पास भी नहीं फटकता।

विचार करनेकी बात है कि, आज बालक बालिकाओंको जो शिक्षा दी जाती है वह बन्द कर यदि उन्हें निरक्षर रक्खा जायगा, चायके बदले तुलसीके काढ़का प्रचार किया जायगा, पतलूनके बदले लोग लुङ्गी पहनना प्रारम्भ कर देंगे, साड़ीके बदले पाँच पाँच सौ कलियोंके पुरानी चालके लहँगे स्त्रियाँ पहनने लगेंगीं, पण्डित लोग कलाईमें घड़ी बांधनेके बदले गलेमें जलघड़ी, धूपघड़ी या बालूकी घड़ी या घण्टा लटकावेंगे, चीनीके प्याले-चम्मचके बदले लोग अर्घा-आचमनी पञ्चपात्रका उपयोग करने लगेंगे, फ्रेन्चकट-कर्जनकट-आलबर्टकटके बदले जटा-दाढ़ी बढ़ा लेंगे और रेलों मोटरोंको बन्द कर बैलगाड़ियाँ-भैंसागाड़ियाँ चलायी जाने लगेंगीं, तो क्या काल तुरन्त भाग जायगा

भब्बुओंने कलिके गालसे बचनेके कुछ उपाय भी बताये हैं। जो कुछ मिल जाय, उससे सन्तुष्ट रहो, सत्यनारायण, ललनछट आदि व्रतोत्सव कृपणता छोड़कर मनाया करो, दान-दक्षिणामें भब्बुओंको हाथी-घोड़े, धन रत्न, धान्य-वस्त्र, मिष्टान्न-पकवान, बहू-बेटी आदि अर्पण कर सन्तुष्ट किया करो, किसी प्रकारका प्रतीकार न कर जो कुछ होता जाय, उसे देखा करो—सहा करो और हाथ पर हाथ रखकर बैठे बैठे राम नाम जपा करो। यदि कोई हाथ पैर हिलनेका उपदेश करे। तो उसे धर्महीन, पतित, वेदनिन्दक जानकर कलिवर्ज्य-प्रकरण और प्रायश्चित्तके कुछ संस्कृत श्लोक सुना दो। कलिवर्ज्य-प्रकरणमें पुरुषार्थनाशकी कोई बात नहीं छूटी है। बस, चार लाख बत्तीस हज़ार वर्षों तक इसी तरह चुप्पी साधे बैठ रहनेसे बेड़ा पार है। फिर ब्रह्म-साक्षात्कार या मोक्ष बहुत दूर नहीं रह जायगा।

कलि-सन्तरणका यह कैसा अच्छा उपाय है; बुद्धिहत्याका कितना उत्तम यंत्र है! इस यंत्रके आगे सिर झुका देनेसे ही भारतकी सब ओजस्विता मारी गयी है। बौद्धों, ईसाइयों अथवा मुसलमानोंने अपने धर्म या समाजमें कालिको नहीं घुसने दिया। इसीसे

बौद्धोंके चीन, जापान आदि पौर्वात्य राष्ट्र, ईसाइयोंके युरुप, अमेरिका आदि पाश्चात्य राष्ट्र और मुसलमानोंके तुर्कस्तान, काबुल आदि मध्य राष्ट्र उत्कर्षशाली हैं और हम कलिके मारे बेज़ार हैं! यदि हमें फिर वर्द्धिष्णु और जयिष्णु बनना है तो मनोदौर्बल्य उत्पन्न करने वाली कलिकल्पनाको हिमालयमें भेज देना चाहिये। वास्तवमें किसी युगका प्रवर्तन करना राजशासको अथवा सामाजिक नेताओंके हाथ है। ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है:—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यतेचरन्॥चरैवेति॥

"जहां मनुष्यको नींद आयी और उसका कलि आया जहाँ उसने आलसको हटाया और उसका द्वापर आरम्भ हुआ, वह उठ बैठा और उसे त्रेता युगके चिन्ह दिखाई देने लगे और जहां उसने उद्योग आरम्भ किया और उसका सत्ययुग आ पहुँचा। इसलिये प्रयत्न करो।" इस वेदाज्ञासे भी यही सिद्ध होता है कि, जब हम सजग होकर अपना कर्तव्य पालन करने लगेंगे, तभी सत्ययुगका प्रवर्तन कर सकेंगे। यह हमें अपने मनमें अच्छी तरह जमा लेना चाहिये और कलिका काला मुँह कर देना चाहिये। यदि हम असावधान रहेंगे, तो निश्चयसे जान रक्खें कि, झब्बू लोग हमें अपने बुद्धिहत्याके कारखानेमें पकड़कर ले जांयगे और अवतारवाद, भाग्यवाद, कलिकल्पनाकी टिकटीपर चढ़ा कर फाँसी लटका देंगे।

साहित्य-परिचय और समालोचन

(१) षट् खंडागम ('धवला' टीका और उसके हिन्दी अनुवाद सहित) प्रथम खंडका सत्प्ररूपणा नामक प्रथम अंश—मूल लेखक, भगवान पुष्पदन्त भूतबलि! सम्पादक, प्रोफेसर हीरालालजी जैन एम.ए., एल्.एल्.बी, संस्कृताध्यापक किंग-एडवर्ड-कालेज अमरावती। प्रकाशक, श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द शिताबराय, जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय अमरावती (बरार)। बड़ा साइज पृष्ठ संख्या, सब मिलाकर ५५६। मूल्य, सजिल्द तथा शास्त्राकार प्रत्येकका १०) रु०।

'धवल' नामसे प्रसिद्ध जिस ग्रंथके दर्शनोंके लिये जनता अर्सेसे लालायित है उसके 'जीवस्थान' नामक प्रथम खंडका यह ग्रन्थ प्रथम अंश है। इस अंशमें मूलके मंगलाचरण सहित कुल १७७ सूत्र हैं। मंगलाचरणका सूत्र प्रसिद्ध णमोकारमंत्र है और उसकी व्याख्या तथा मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्तारूपसे छह बातोंका विस्तारके साथ वर्णन पृष्ठ ७२ तक किया गया है। इसीमें मूल सूत्रके अवतारकी वह सब कथा दी है जिसे पाठक 'अनेकान्त' के गत विशेषांकमें 'धवलादि श्रुत परिचय' शीर्षकके नीचे पढ़ चुके हैं। उसके बाद जीवस्थानके कुछ प्रारंभिक सूत्रोंकी व्याख्या पृष्ठ १५४ तक दी है, जिनमें १४ जीव समासों (गति आदि मार्गणास्थानों) का उल्लेख किया गया है और फिर उनकी विशेष प्ररूपणाके लिये 'जीव स्थान' के सत्-प्ररूपणादि आठ अनुयोग द्वारोंके नाम सूत्र नं० ७ में दिये हैं। उसके बाद ८वें सूत्रसे सत् प्ररूपणाका ओघ और आदेशरूपसे विस्तारके साथ वर्णन ४१० पृष्ठ तक किया गया है। यह सब वर्णन अनेक अंशोंमें गोम्मट-सारके गुणस्थान, मार्गणा और सत्प्ररूपणाके वर्णनके साथ मिलता-जुलता है। टीकामें बहुतसी जगह 'उक्तं-च' रूपसे जो २१४ पद्य दिये हैं उनमें ११० के करीब

गाथाएँ ऐसी हैं जो गोम्मटसारमें भी प्रायः ज्यों की त्यों और कहीं कहीं कुछ पाठ-भेदके साथ पाई जाती हैं और जो किसी प्राचीन ग्रंथ—संभवतः पंचसंग्रह प्राकृत—परसे उद्धृतकी गई हैं। बाकी १०४ के करीब संस्कृत-प्राकृतके पद्य भी दूसरे ग्रंथों पर से उद्धृत किये गये हैं। और इस तरह ग्रंथमें प्रस्तुत विषयका अच्छा सप्रमाण विवेचन किया गया है।

मूल ग्रन्थ और उसकी 'धवला' टीकाका हिन्दी अनुवाद भी प्रत्येक पृष्ठ पर साथ साथ दिया गया है। परन्तु अनुवादक कौन हैं यह ग्रंथ भरमें कहीं भी स्पष्ट सूचित नहीं किया गया। जान पड़ता है जिन पं० हीरालालजी शास्त्री और पं० फूलचन्दजी शास्त्रीके सहयोगसे ग्रंथका सम्पादन हुआ है और जिन्हें ग्रंथके मुख पृष्ठ पर 'सहसम्पादकौ' लिखा है उन्हींके विशेष सहयोगसे ग्रंथका अनुवाद कार्य हुआ है। अनुवादके अतिरिक्त फुटनोट्सके रूपमें टिप्पणियाँ लगानेका जो महत्वपूर्ण कार्य हुआ है उसमें भी उक्त दोनों विद्वानों का प्रधान हाथ जान पड़ता है। टिप्पणियोंमें अधिकांश तुलना श्वेताम्बर ग्रंथों परसे की गई है। अच्छा होता यदि इस कार्यमें दिगम्बर ग्रंथोंका और भी अधिकताके साथ उपयोग किया जाता। इससे तुलना-कार्य और भी अधिक प्रशस्तरूपसे सम्पन्न होता। अस्तु; अनुवादको पढ़कर जाँचनेका अभी तक मुझे कोई अवसर नहीं मिल सका, इसलिये उसके विषयमें मैं अभी विशेषरूपसे कुछ भी कहनेके लिये असमर्थ हूँ परन्तु सामान्यावलोकनसे वह प्रायः अच्छा ही जान पड़ता है।

ग्रंथके शुरूमें अमरावती, आरा और कारंजाकी प्रतियोंके फोटो चित्र और ग्रन्थोद्धारमें सहायक सेठ हीराचन्द, सेठ माणिकचन्द जी आदि ७ महानुभावोंके चित्र, चित्र-परिचय सहित देकर ७ पेजका प्राक्कथन, ४ पेजमें अंग्रेजी प्रस्तावना और फिर ८८ पृष्ठकी हिन्दी प्रस्तावना दी है। साथ, प्राक्कथनके बाद एक पेजकी विषय-सूची भी दी है, जो कि फोटो-चित्रोंसे भी पहले दी जानी चाहिये थी; क्योंकि सूचीमें फोटो चित्र तथा प्राक्कथनको भी विषयरूपसे दिया गया है। प्राक्कथनादि तीनों निबन्ध प्रो० हीरालालजीके लिखे हुए हैं। उनके बाद दो पेज की संकेत सूची, तीन पेजकी सत्प्ररूपणाकी विषय-सूची, एक पेजका शुद्धि पत्र, एक पेजका सत्प्ररूपणाका मुखपृष्ठ, और फिर एक पेजका मंगलाचरण दिया है। सत्प्ररूपणाकी जो विषय-सूची दी है वह केवल सत्प्ररूपणाकी न होकर उसके पूर्वके १५८ पृष्ठोंकी भी विषय-सूची है। अच्छा होता यदि उसे जीवस्थानके प्रथम अंशकी विषय-सूची लिखा जाता। और सत्-प्ररूपणाका जो मुख पृष्ठ दिया है उस पर सत्प्ररूपणाकी जगह 'जीवस्थान प्रथम अंश' ऐसा लिखा जाता। क्योंकि षट् खण्डागमका पहला खण्ड जीवस्थान है, उसीका णमोकारमंत्र मंगलाचरण है, न कि सत्प्ररूपणा का।

ग्रन्थके अन्तमें ६ परिशिष्ट दिये हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

१ संत-प्ररूपणा-सुत्ताणि, २ अवतरण-गाथा-सूची, ३ ऐतिहासिक नाम सूची, ४ भौगोलिक नाम सूची, ५ ग्रन्थनामोल्लेख, ६ वंशनामोल्लेख, ७ प्रतियोंके पाठ-भेद, ८ प्रतियोंमें छूटे हुए पाठ, ९ विशेष टिप्पण।

प्रस्तावनामें—१ श्री धवलादि सिद्धान्तोंके प्रकाशमें आनेका इतिहास, २ हमारी आदर्श प्रतियां, ३ पाठ-संशोधनके नियम, ४ षड् खण्डागमके रचयिता, ५ आचार्य-परम्परा, ६ वीर निर्वाणकाल, ७ षट् खण्डागमकी टीका धवलाके रचयिता, ८ धवलासे पूर्वके

टीकाकार, ६ धवलाकारके सन्मुख उपस्थित साहित्य, १० षट् खण्डागमका परिचय, ११ सत्प्ररूपणाका विषय, १२ ग्रन्थकी भाषा, इतने विषयों पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तावना बहुत अच्छी है और परिश्रमके साथ लिखी गई है। हाँ, कहीं-कहीं पर कुछ बातें विचारणीय तथा आपत्तिके योग्य भी जान पड़ती हैं, जिन पर फिर कभी अवकाशके समय प्रकाश डाला जा सकेगा। यहां पर एक बात ज़रूर प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि प्रस्तावनामें 'धवला' को वर्गणा खण्डकी टीका भी बतलाया गया है। परन्तु मेरे उस लेखकी युक्तियों पर कोई विचार नहीं किया गया जो 'जैन सिद्धान्त भास्कर' के ६ ठे भागकी पहली किरणमें 'क्या यह सचमुच-भ्रम निवारण है?' इस शीर्षकके साथ प्रकाशित हो चुका है और जिन पर विचार करना उचित एवं आवश्यक था। यदि उन युक्तियों पर विचार करके प्रकृत निष्कर्ष निकाला गया होता तो वह विशेष गौरवकी वस्तु होता। इस समय वह पं० पन्नालालजी सोनीके कथनका अनुसरण सा जान पड़ता है, जिनके लेखके उत्तरमें ही मेरा उक्त लेख लिखा गया था। इस विषयका पुनः विशेष विचार अनेकान्तके गत विशेषांकमें दिए हुए 'धवलादि श्रुत-परिचय' नामक लेखमें 'वर्गणा-खण्ड-विचार' नामक उपशीर्षकके नीचे किया गया है। उस परसे पाठक यह जान सकते हैं कि उन युक्तियोंका समाधान किये बगैर यह समुचित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि धवला टीका षट् खण्डागमके प्रथम चार खण्डोंकी टीका न होकर वर्गणाखण्ड सहित पांच खंडोंकी टीका है।

इस प्रकारकी कुछ त्रुटियोंके होते हुए भी ग्रंथका यह संस्करण हिन्दी अनुवाद, टिप्पणियों, प्रस्तावना और परिशिष्टोंके कारण बहुत उपयोगी हो गया है। छपाई-सफाई भी उत्तम है। मूल्य भी परिश्रमादिको देखते हुए अधिक नहीं है। और इसलिये यह ग्रंथ विद्वानोंके पढ़ने, मनन करने तथा हर तरहसे संग्रह करनेके योग्य है। इसकी तय्यारीमें जो परिश्रम हुआ है उसके लिये प्रोफेसर साहब और उनके दोनों सहायक शास्त्रीजी धन्यवादके पात्र हैं और विशेष धन्यवादके पात्र भेलसाके श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्दजी हैं, जिनके आर्थिक सहयोगके बिना यह सब कुछ भी न हो पाता, और जिन्होंने 'जैन साहित्योद्धारक फंड' स्थापित करके समाज पर बहुत बड़ा उपकार किया है।

अन्तमें श्री गजपति उपाध्यायको, जो मोडबद्रीके सुदृढ़ कैदखानेसे चिरकालके बन्दी धवल-जयधवल ग्रंथराजोंको अपने बुद्धिकौशलसे छुड़ाकर बाहर लाये तथा सहारनपुरके रईस ला० जम्बूप्रसादजीको सुपुर्द किया, और श्री सीताराम जी शास्त्रीको, जिन्होंने अपनी दूरदृष्टिता एवं हस्तकौशलसे उक्त ग्रंथराजोंकी शीघ्रातिशीघ्र प्रतिलिपियाँ करके उन्हें दूसरे स्थानों पर पहुँचाया और इस तरह हमेशाके लिये बन्दी (क़ैदी) होनेके भयसे निर्मुक्त किया *, धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। ये दोनों महानुभाव सबसे अधिक धन्यवादके पात्र हैं। इन लोगोंके मूल परिश्रम पर ही प्रकाशनादिकी यह सब भव्य इमारत खड़ी हो सकी है और अनेक सज्जनोंको ग्रन्थके उद्धारकार्यमें सहयोग देनेका अवसर मिल सका है। यदि वह न हुआ होता तो आज हमें इस रूपमें ग्रन्थराजका दर्शन भी न हो पाता। खेद है इन परोपकारी महानुभावोंके कोई भी चित्र ग्रन्थमें नहीं दिये गये हैं। मेरी रायमें ग्रन्थोद्धारमें सहायकोंके जहाँ चित्र दिये

* यदि श्री सीतारामजी शास्त्री ऐसा न करते तो इन ग्रन्थराजोंकी सहारनपुरमें भी प्रायः वही हालत होती जो मूडबद्रीके कैदखानेमें हो रही थी।

हैं वहाँ इनके चित्र सबसे पहले तथा सर्वोपरि दिये जाने चाहियें थे। आशा है ग्रन्थका दूसरा अंश प्रकाशित करते समय इस बातका जरूर खयाल रक्खा जायगा।

(२) **श्रीमद्राजचन्द्र**-(संग्रहग्रन्थ) मूल गुजराती लेखक, श्रीमद् राजचन्द्र जी शतावधानी सम्पादक और हिन्दी अनुवादक, पं० जगदीशचन्द्र, शास्त्री एम०ए०। प्रकाशक, सेठ मणीलाल, रेवाशंकर जगजीवन जौहरी, व्यवस्थापक श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई नं० २ बड़ा साइज पृष्ठ संख्या, सब मिलाकर ६४४ मूल्य सजिल्द ६) रु०।

यह वही महान् ग्रन्थ है जिस परसे महात्मा गाँधीके लिखे हुए 'रायचन्द भाईके कुछ संस्मरण' अनेकान्तकी गत ८ वीं किरणमेंश्री मद्राजचन्द्रजीके दो चित्रों सहित उद्धृत किये गये थे और 'महात्मा गांधीके २७ प्रश्नोंका समाधान' आदि दूसरे भी कुछ लेख अनेकान्तमें समय-समय पर दिये जाते रहे हैं। इसमें श्रीमद्राजचन्द्रजीके लिखे हुए आत्मसिद्धि, मोक्षमाला, भावनाबोध, आदि ग्रन्थोंका और सम्पूर्ण लेखों तथा पत्रोंका तथा उनकी प्राइवेट डायरी आदिका संग्रह किया गया है। साथमें पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम. ए. का लिखा हुआ 'राजचन्द्र और उनका संक्षिप्त परिचय' नामका एक निबन्ध भी लगा हुआ है जो बड़ा ही महत्वपूर्ण है और जिससे कविश्रेष्ठ श्रीमद्राजचन्द्रके जीवनका बड़ा अच्छा परिचय मिलता है। ग्रंथके शुरूमें एक विस्तृत विषय-सूची महात्मा गांधीजीके द्वारा प्रस्तावना रूपमें लिखे हुए उक्त संस्मरणोंके पूर्व लगी हुई है और अंतमें ६ उपयोगी परिशिष्ट लगाए गये हैं, जिन सबसे ग्रंथकी उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। यह ग्रंथ बड़ा ही महत्व-पूर्ण है और इसमें अध्यात्मादि विषयोंके ज्ञानकी विपुल सामग्री भरी हुई है। ग्रंथ बार-बार पढ़ने, मनन करने और संग्रह करनेके योग्य है। मूल्य ६) रुपया इतने बड़े आकार और पुष्ट जिल्द सहित ग्रंथका अधिक नहीं है। ग्रंथकी छपाई-सफाई सब सुन्दर और मनोमोहक है। गुजरातीमें इस ग्रंथके कई संस्करण हो चुके हैं। हिन्दीमें यह पहला ही संस्करण महात्मा गांधीजीके अनुरोध पर अनुवादित आदि होकर प्रकाशित हुआ है। और इसलिये हिन्दी पाठकोंको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये। ग्रन्थ परसे श्रीमद्राजचन्द्रजीको भले प्रकार समझा और जाना जा सकता है। महात्मा गाँधीजीके जीवन पर सबसे अधिक छाप आपकी ही लगी है, जिसे महात्माजी स्वयं स्वीकार करते हैं। आप ३४ वर्षकी अवस्थामें ही स्वर्ग सिधार गये और इतनी थोड़ी अवस्थामें ही इस सब साहित्यका निर्माण कर गये हैं, जिससे आपकी बुद्धिके प्रकर्षका अनुभव किया जा सकता है।

(३) **त्रिभंगीसार**—(हिन्दी टीका सहित) मूल लेखक, श्रीतारणतरण स्वामी, टीकाकार ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद। प्रकाशक सेठ मन्नूलाल जैन, मु० आगासोद (सागर) सी० पी०। बड़ा साइज पृष्ठ संख्या, सब मिलाकर १४४ मूल्य १) रु०।

मूल ग्रंथकी भाषा न संस्कृत है न प्राकृत और न हिन्दी। व्याकरणादिके नियमोंसे शून्य एक विचित्र प्रकारकी खिचड़ी भाषा है। मालूम होता है इसके लेखक किसी भी भाषाके पंडित नहीं थे। उन्हें अपने सम्प्रदाय वालोंके लिये कुछ-न-कुछ लिखनेकी जरूरत थी, इसलिये उन्होंने अपने मनके समझौतेके अनुसार उसे उक्त खिचड़ी भाषामें ही लिखा है। पद्यों-के छन्द भी जगह जगह पर लिखित हैं। ब्र० शीतल-प्रसादजीने मूलग्रंथको ७१ गाथाओंमें बतलाया है। परन्तु मूलके सब पद्य गाथा छन्दमें नहीं हैं। ब्रह्मचारी

जी ने बहुधा रबड़की तरह खींच खांचकर पद्योंका कुछ अर्थ बिठलाया है। उसका अन्वयार्थ, भावार्थ और विशेषार्थ तक लिखा है और इस तरह पुस्तक कुछ पढ़ने योग्य हो गई है, जिसका श्रेय ब्रह्मचारीजीको है। अन्यथा पुस्तक कोई खास महत्वकी मालूम नहीं होती और न विद्वानोंकी उसके पढ़नेमें रुचि ही हो सकती है। अस्तु; यह पुस्तक जैन मित्रके ग्राहकोंको उपहारमें दी गई है और अलग मूल्यसे भी मिलती है। ब्रह्मचारी जी तारणतरण स्वामीके साहित्यका उद्धार करनेमें लगे हुए हैं। इससे पहले तारणतरण श्रावकाचार आदि और भी पांच ग्रंथ अनुवादित होकर प्रकाशित हो चुके हैं। खेद है ब्रह्मचारी जी इस साहित्यकी भाषा पर कोई प्रकाश नहीं डाल रहे हैं, जिसका डालना अनुवादके समय साहित्यकी ऐसी विचित्र स्थिति होते हुए आवश्यक था।

ग्रन्थका नाम 'त्रिभंगीदल प्रोक्त' इस प्रतिज्ञा-वाक्य परसे 'त्रिभंगीदल' तो उपलब्ध होता है परन्तु 'त्रिभंगी-नामकी उपलब्धि नहीं होती। सम्भव है ब्रह्मचारी जी के द्वारा ही नामका यह संस्कार अथवा सुधार किया गया है।

(४) जैनधर्ममें अहिंसा—लेखक, ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद। प्रकाशक, मूलचन्द किसनदास कापड़िया, मालिक दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत। पृष्ठ संख्या, सब मिलाकर १७६। मूल्य, १) रु०।

इस पुस्तका विषय उसके नामसे ही प्रकट है। इसमें अनेक जैन ग्रन्थोंपरसे कुछ वाक्योंको लेकर उन्हें भावार्थ सहित दिया है। और यह बतलानेकी चेष्टा की गई है कि "जैन धर्मको पालनेवाले सर्वगृहस्थी भले प्रकार राज्यशासन, व्यवहार, परदेशयात्रा, कारीगरीके काम व खेती आदि कर सकते हैं व श्रावकके व्रतोंको भी पाल सकते हैं।" साथ ही, इसमें अजैन ग्रन्थोंके कुछ प्रमाण भी अहिंसाकी पुष्टिमें दिये गये हैं। पुस्तक ११ अध्यायोंमें बटी हुई होनेपर भी किसी अच्छे व्यवस्थित विषयक्रमको लिये हुए नहीं हैं। विषय-विवेचन और कथनका ढँग भी बहुत कुछ साधारण है। छपाई-सफ़ाई तो और भी मामूली है। इतनेपर भी यह पुस्तक महात्मागाँधीजीको समर्पित की गई है। मूल्य १) रु० अधिक है। ऐसी पुस्तकका मूल्य चार-छह आने होना चाहिये था। जैन मित्रके ग्राहकोंको यह पुस्तक ला० रोशनलालजी जैन बी. ए. फीरोजपुरकी ओरसे अपने पूज्य पिता ला० लालमनजीकी स्मृतिमें जिनका सचित्र जीवन चरित भी साथमें लगा है, भेंटमें दी गई है।

प्रातः स्मरणीय जगत्पूज्य परम योगिराज जैनाचार्य **श्री मद्विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी** विरचित—अखिल जैन ग्रन्थोंका सार सर्वस्व, अद्वितीय, अनुपमेय, विद्वज्जन प्रशंसित-मागधी (प्राकृत) भाषाका

एकमात्र विश्वसनीय विराट् बृहद्विश्वकोश

रचना काल } सं० १९४६-१९६०

अभिधान राजेन्द्र

मुद्रण काल { सं० १९६४-१९८०

पृष्ठ संख्या १०,०००] (भाग १ से ७) [शब्द संख्या ६०,०००

कुछ विद्वानोंके अभिप्राय पढ़िये :—

सर जॉर्ज ए० ग्रियर्सन, के० सी० आई० ई० (इंग्लैण्ड):—"............मुझे मेरे जैन प्राकृतके अध्ययनमें इस ग्रन्थका बहुत साह्य हुवा है............यह विश्वकोश संदर्भ तथा आधार दिग्दर्शनके लिये अति मूल्यवान तथा उपयोगी है।"

प्रो० सिल्वेन लेवी (यूनिवर्सिटी ऑफ पेरिस, फ्रांस) :—"............यह ग्रन्थ पीटर्सबर्ग डिक्शनरीसे भी बढ़कर उपयोगी है, इसमें आधार और अवतरणोंसे सज्ज पूर्ण शब्द संग्रह ही केवल नहीं मिलता है, किन्तु उन शब्दोंके साथ संबद्ध मतमतान्तर, इतिहास तथा विचारोंका पूरा-पूरा विवेचन भी प्राप्त होता है...।"

प्रो० सिद्धेश्वर वर्मा, एम० ए० (जम्मू-काश्मीर):—"............इसमें आज तक संसारको सर्वथैव अज्ञात ऐसा अमूल्य अवतरण ग्रन्थाधारका बहुत बड़ा भण्डार भरा पड़ा है।"

हरेक यूनिवर्सिटी, कॉलेज, विद्यालय, लायब्रेरी, जैन भण्डार, विद्वान् धनी लोग, राजा, महाराजाके संग्रहमें अवश्य रखने योग्य है।

मूल्य सम्पूर्ण सातों भागके ग्रन्थका केवल रु० १७५), अधिक ग्रन्थोंके लिये तथा व्यापारियोंके लिये कमीशनके लिये पत्र-व्यवहार कीजिये।

पता:—अभिधान राजेन्द्र प्रचारक संस्था, रतलाम (मध्य भारत)

Regd. No. L. 4328

अनुकरणीय

गत वर्ष कई धर्म-प्रेमी दातारोंकी ओरसे १२१ जैनेतर संस्थाओंको अनेकान्त एक वर्ष तक भेंट स्वरूप भिजवाया गया था। हमें हर्ष है कि इस वर्ष भी भेंट स्वरूप भिजवाते रहनेका शुभ प्रयास हो गया है। निम्न सज्जनोंकी ओरसे जैनेतर संस्थाओंको भेंट स्वरूप अनेकान्त भिजवाया गया है।

अनेकान्त पर आए हुए लोकमतसे ज्ञात हो सकेगा कि अनेकान्तके प्रचारकी कितनी आवश्यकता है। जितना अधिक अनेकान्तका प्रचार होगा उतना ही अधिक सत्य शान्ति और लोक हितैषी भावनाओंका प्रचार होगा। अनेकान्तको हम बहुत अधिक सुन्दर और उन्नतिशील देखना चाहते हैं। किन्तु हमारी शक्ति बुद्धि हिम्मत सब कुछ परिमित हैं। हमें समाज हितैषी धर्म बन्धुओंके सहयोगकी अत्यन्त आवश्यकता हैं। हम चाहते हैं समाज के उदार हृदय बन्धु जैनेतर संस्थाओं और विद्वानोंको प्रचारकी दृष्टिसे अनेकान्त अपनी ओरसे भेंट स्वरूप भिजवाएँ और जैन बन्धुओंको अनेकान्तका ग्राहक बननेके लिए उत्साहित करें। ताकि अनेकान्त कितनी ही उपयोगी पाठ्य सामग्री और पृष्ठ संख्या बढ़ानेमें समर्थ हो सके। लड़ाईकी तेजीके कारण जबकि पत्रोंका जीवन संकटमय हो गया है, पत्रोंका मूल्य बढ़ाया जा रहा है। तब इस मंहगीके जमानेमें भी प्रचारकी दृष्टिसे केवल ३) रु० वार्षिक मूल्य लिया जा रहा है। इसपर भी जैनेतर विद्वानों शिक्षण संस्थाओं और पुस्तकालयोंमें भेंट स्वरूप भिजवाने वाले दानी महानुभावोंसे ढाई रुपया वार्षिक ही मूल्य लिया जायगा। किन्तु यह रियायत केवल जैनेतर संस्थाओंके लिये अमूल्य भिजवाने पर ही दी जायेगी। समाजमें ऐसे १०० दानी महानुभाव भी अपनी ओरसे सौ-सौ, पचास-पचास अथवा यथाशक्ति भेंट स्वरूप भिजवानेको प्रस्तुत हो जाएँ तो 'अनेकान्त' आशातीत सफलता प्राप्त कर सकता है। जैनेतरोंमें अनेकान्त जैसे साहित्यका प्रचार करना जैनधर्मके प्रचारका महत्वपूर्ण और सुलभ साधन है।

सेठ गुलाबचन्द जी टोंग्या, इन्दौरकी ओरसे—

१. मंत्री शान्ति निकेतन पुस्तकालय बोलपुर (बंगाल)
२. ,, हिन्दू यूनिवर्सिटी ,, बनारस
३. ,, दी हिन्दुस्तान एकेडेमी ,, इलाहबाद
४. ,, श्री नागरी प्रचारिणी सभा ,, बनारस
५. ,, विक्टोरिया कालेज ,, ग्वालियर
६. ,, गुजरात कालेज ,, अहमदाबाद
७. ,, मद्रास यूनिवर्सिटी ,, मद्रास
८. ,, मोरिस कालेज ,, नागपुर
९. ,, कलकत्ता यूनिवर्सिटी ,, कलकत्ता
१०. ,, ओरिएटल कालेज ,, लाहौर

रोडमल मेघराज जैन सुसारीकी ओरसे—

११. मंत्री पब्लिक लायब्रेरी अंजड़ (बड़वानी)
१२. ,, श्रीकृष्ण पब्लिक वाचनालय बड़वानी
१३. ,, पब्लिक लायब्रेरी धार
१४. ,, श्री महावीर वाचनालय सुसारी (इन्दौर)
१५. ,, जीवाजी वाचनालय मनावर (ग्वालियर स्टेट)

ला० ज्योति प्रसादजी जैन, मेरठ की ओरसे—

१६. मंत्री श्रीवीर पुस्तकालय, मेरठ

—व्यवस्थापक

वीर प्रेस ऑफ इण्डिया, कनॉट सर्कस, न्यू देहली